सम्पादक और प्रकाशक—

वैद्य पं. चन्द्रशेखर जैन शास्त्री, न्यायायुर्वेदाचार्य

अध्यक्ष— आयुर्वेद-चिकित्सक सङ्घ,

कालाभवन [?], पुरानी चरहाई, जबलपुर।

इस पुस्तक का मूल्य तीन रुपया मात्र

—मुद्रक—

चन्द्रशेखर प्रेस,

कालाभवन [?], पुरानी चरहाई,

जबलपुर।

— इस ग्रन्थराज की विषय-सूची —

(प्रथम खण्ड)

पहला अध्याय— परिभाषायें। औषधियों के गुणधर्म और प्राप्ति। १५

दूसरा अध्याय— औषध-निर्माण ३१

तीसरा अध्याय— औषध-प्रयोग की विधियां ३७

चौथा अध्याय— औषधियोंकी क्रियाविधि, औषध अवचारणकाल ४२

पांचवां अध्याय— क्रियावैषम्य या गुणविरोध ४६

छठा अध्याय— मात्रा-विज्ञान ५१

(द्वितीय खण्ड)

पहला अध्याय— अन्न-आमाशयपथ पर कार्य करनेवाली औषधियां ५६

दूसरा ,, श्वसनसंस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां ७१

तीसरा ,, मूत्रसंस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां ८०

चौथा ,, रक्तस्तम्भक या रक्तावरोधक औषधियां ८७

पांचवां ,, रक्तवाहिनी संस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां ८९

छठा ,, केन्द्रीय नाड़िका संस्थान ९६

सातवां ,, स्वायत्त नाड़िका संस्थान ९७

आठवां ,, रासायनिक चिकित्सा १०७

नौवां ,, बैक्टेरियल संक्रमण और उसकी चिकित्सा के लिये प्रयुक्त औषधियां ११७

दसवां ,, विटामिन वर्ग १३०
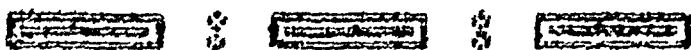
— आप से अपनी —

चिकित्सक का स्थान ईश्वर तुल्य है। क्योंकि भूतकल्याण के प्रति वह प्रतिसमय जागरूक रहता है। चिकित्सा-संसार में प्रतिदिन नई-नई खोजें होती रहती हैं। उनका प्रतिफल कभी बहुत अच्छा और कभी बुरा भी प्रतीत होता है। किन्तु फिर भी चिकित्सकों के लिये आदेश है कि वे नये-नये ग्रन्थों को देखें, पढ़ें और पारायण करें।

एक-आध शास्त्र के पढ़ लेने मात्र से कोई उच्चकोटि का मर्मज्ञ या चिकित्सा-शास्त्रज्ञाता नहीं हो सकता। इसलिये चिकित्सक को अध्ययनानुरागी, शास्त्राभ्यासी और अनुभवी होना चाहिये। आयुर्वेद ने इसीप्रकार उन्नति की थी व आज ऐलोपैथी भी इसी दृष्टपर उन्नति कर रही है। आयुर्वेद ने स्वयं लिखा है कि चिकित्सक को बहुशास्त्री होना चाहिये। लिखा है—

> एकं शास्त्रमधीयानो, न विद्याच्छास्त्र—निश्चयम्।
>
> तस्माद्बहुश्रुतं शास्त्रं, विजानीयाच्चिकित्सकः ॥ १ ॥

तदनुसार हमने आधुनिक-पद्धति को सर्वसाधारण वैद्यों के लाभ अध्ययनार्थ यहाँ प्रकाशित किया है। आपने आयुर्वेदीय-शास्त्रों का पारायण किया है, अब आप इस ऐलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति को समझिये और फिर जनकल्याण के पवित्र कार्य में जुट जाइये।

इस ग्रन्थ में चिकित्सा-प्रकरणों में प्रायः बहुप्रचलित औषधों की ही चर्चा की गई है। शहरों के बहुत से चिकित्सक काफी समय से इनका उपयोग कर रहे हैं, इसलिये सम्पूर्ण चिकित्सक समाज को इस ग्रन्थ से लाभ प्राप्त होगा। साथ ही सर्वसाधारण भी इस आवश्यक विषय की जानकारी करके अपने को स्वस्थ रख सकेंगे। आशा है कि सर्वत्र इस ग्रन्थ का आदर होगा।

रक्षा—बन्धन
सम्वत् २०१९

—चिकित्सकों का सेवक
वैद्य पं. चन्द्रशेखर जैन शास्त्री।

— इस ग्रन्थराज में क्या है ? —

औषध-विज्ञान प्राचीन समय से वर्तमान समय तक दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। यह विषय इतना गम्भीर और विस्तृत है कि थोड़े से में प्रकाश नहीं डाला जा सकता। फिर भी हमारे आग्रह पर माननीय डॉ. बलदेवनारायणसिंह जी एम. बी. बी. एस. ने सरलतथा सर्वसाधारण को इस विषयका ज्ञान करनेके लिये प्रस्तुत ग्रन्थ लिखा है

कोई भी वैद्य या चिकित्सक इस ग्रन्थका ५-७ बार अध्ययन करके ऐलोपैथिक चिकित्सा-सिद्धान्त और पद्धतियोंके विषयमें अच्छी जानकारी कर सकता है। अब प्रस्तुत ग्रन्थके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालेंगे।

—औषध-विज्ञान के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातें—

एलोपैथी में द्रव्य-गुण विज्ञान या निघण्टु को 'मैटेरिया मेडिका' कहते हैं। औषध-विज्ञान को 'फार्माकोलोजी' और औषध-निर्माण को 'फार्मेसी' कहते हैं। शास्त्रीय भैषज्य-संहिता का नाम है—'ऑफी-सियल फार्माकोपिया'।

औषधोंमें १ धातु, गन्धक, खनिज लवण (निरिन्द्रिय), २ वनस्पति मूलक जैसे— जड़ी-बूटी, डाल-पत्ते आदि, ३ जान्तवमूलक जैसे— पेप्सिन, हारमोन्स, (ग्रन्थि-रस) आदि और ४ संश्लिष्ट-समास जैसे पैल्युड्रिन, मेपाक्रिन आदि होते हैं। सेन्द्रिय कल्प 'कार्बनिक' कहलाते हैं और निरिन्द्रिय-कल्प अकार्बनिक।

तैल तीन प्रकार के होते हैं— १ स्थिर (स्निग्ध मिश्रण) २ वाष्प-शील (सुगन्धित तैल) और ३ खनिजतैल (पैट्रोलियम)। इन सबका औषधोपयोग होता है।

औषध-निर्माण की विविध-विधियाँ—

औषधें कूटकर, तपाकर, भस्म करके, स्फटिक रूप में बनाकर, काढ़ा करके, हिम फाण्ट द्वारा, रङ्ग उड़ाकर, पार्थक्यकरण, परिपाचन, मृदुकरण, निचोड़कर, पेलकर, संगलन गलन करके, क्षार-निस्सारण, मद्यकोहल से भिगोकर, टपकाकर, वस्त्र-पूत, जरा-कुरकुर, छानकर,

घोलकर, उड़ाकर आदि अनेक विधियों से तैयार की जाती हैं। इनके विभिन्न रूप इस प्रकार हो जाते हैं।

१. परिशुद्ध जल २. कैप्स्युल्स ३. इञ्जैक्शन ४. लेप-मालिश की दवायें (लिनिमेन्ट) ५ मिक्सचर (मिश्रण) ६ पिल्स या गोलियां ७. प्लास्टर या प्रलेप, ८. स्पिरिट-शर्क ९. गुदवर्ति या सपोजिटरी १० सिरप या शरबत ११. टिकिया या टेबलेट १२ अन्यान्य साधारण कल्प

औषध-प्रयोग की विधि या औषध-प्रयोग के मार्ग—

साधारणतः औषधें १. पाचन-पथ (मुख, परिपाचन-पथ, मुख की श्लैष्मिक कला या जिह्वातल) से २ आमाशय और आंतों से, ३ गुद मार्ग से ४ श्वसन मार्ग से ५ त्वगीय मार्ग से ६ विद्युत्क्षेपण द्वारा ७ इञ्जैक्शनों के द्वारा, ८ फुफ्फुस या उदर-गुहा द्वारा ९ नेत्र, कर्ण, नासिका द्वारा १० मूत्राशय आदि मार्गों द्वारा रोगानुसार प्रयुक्त होती हैं

औषधों की क्रियायें निम्नलिखित अनेक कारकों पर निर्भर हैं। जैसे मात्रा, आयु, लिङ्ग, आकार, शरीरभार, प्रकृति, सहनशक्ति, आदत व्युत्साहिक प्रवृत्ति, शरीरोष्मा, औषध स्वरूप, अवशोषण-निष्कर्षणमार्ग मानसिक अवस्था, उपवास, रोग, जलवायु, अवधारण विधि या काल संचय, सहयोगिता आदि। इसीलिये एक ही औषध सबमें एक-सा काम नहीं करती।

औषधें अपना काम किसप्रकार करती हैं, इस विषय को समझने के लिये पृष्ठ ४२ से ४८ तक पढ़िये। इसीतरह 'किन औषधोंका परस्पर मिश्रण नहीं करना चाहिये ? अन्यथा गुण-विरोध हो जायगा' विषय को पृष्ठ ४९ के ५१ तक देखें।

माप (नाप) आदि के विभिन्न-भेद—

मान (माप) की अनेक विधियां हैं। उनमें १. दशमलव प्रणाली। २ इम्पीरियल मान ३ घरेलू माप हैं। इन तीनों मापों के विषय में इस ग्रन्थ में जानकारी दी है और अन्त में परस्पर परिवर्तन-तालिका को अच्छी तरह समझा दी है।

आंत्र-आमाशय पर कार्य करनेवाली दवायें—

किया हुआ आहार किसप्रकार पचता है ? कितनी देर में पचता है?

विभिन्न पाचक रसों की आहार पर क्या क्रिया होती है? पेप्टिक-परिपाचन क्या है? क्षार और आहार द्वारा आने वाले रोगाणु कैसे नष्ट होते हैं? आमाशय और आंतों के क्या कार्य हैं? छोटी आंतों का क्या उपयोग है? आहार का रस पाचन-रसों द्वारा किस-किस रूप में परिवर्तित होता है? पक्वाशय में क्या है या क्या होता है? पित्त के कार्य क्या हैं? आदि का उत्तर पृष्ठ ५६ से ६२ तक देखिये।

आमाशय पर काम करनेवाली औषधियां—

चिरायता, कवशिया, कलम्बा आदि में नारङ्गी का छिलका आदि मिलाकर देने से भूख लगती है और पाचन-क्रिया व्यवस्थित होती है वातहर औषधों में वाष्पशील तैल, सुगन्धित लिक्वोयर्स या पिपरमेंट, कपूर, मेन्थोल काम में आते हैं। अम्लता नाशक और वमननाशक औषधोंका परिज्ञान इसी प्रकरणमें आगे करिये। साधारणतः बिस्मथ और केओलीन आमाशयिक श्लैष्मिक-कला पर पतला लेप चढ़ाकर वमन रोकते हैं। पायरिडौक्सिन हाइड्रोक्लोराइड गर्भकालीन या सामुद्रिक वमन को मिटाते हैं। आगे इसी ग्रन्थ में आंतों पर कार्य करनेवाली औषधें देखिये।

कृमिरोग अनेक प्रकार का होता है। वर्तुल, सूत्र, अंकुश, ट्राइकुरा सिस्टोडस, नेमाटोड्स, फ्लूक्स आदि अनेक प्रकार के कृमि-वर्ग होते हैं। इन पर औषधों का विवरण इस ग्रन्थमें अच्छे ढङ्गसे दिया गयाहै

श्वसन-संस्थान पर काम करनेवाली औषधों के विषय में—

जानकारी करने से पहिले अन्तः-श्वसन, प्रकृत श्वसन, बहिः-श्वसन आदि भेदों को समझें, श्वसन-क्रिया का नियन्त्रण जाने और फेफड़ों तथा श्वासनलिकाओं का सम्बन्ध जाने इसके लिये पृ. ७१से७६ तक पूरीतरह कई बार पढ़ना आवश्यक है।

मूत्रसंस्थान (वृक्क, गवीनियां, मूत्राशय, मूत्रनली पर कारगर औषधों में—इन संस्थानों का परिचय देकर इनकी सूक्ष्म संरचना बताई है। बाद में वृक्क के ७ कार्य, मूत्रोत्पादन क्रिया, वात्रैनिक-आकार्बनिक सभाव बताये हैं। मूत्रल और मूत्रवर्धक औषधों का विवरण देकर, रक्तपरिभ्रमण में वृद्धि करनेवाली औषधें बताई हैं। वृक्क पर

स्थानीय रूप से कार्य करनेवाली औषधों का विवरण देकर चिकित्सा-त्मक व्यवहार बताया है।

हृद्वाहिनी-संस्थान पर प्रभावक औषधें—

इनमें डिजिटेलिस आदि बलवर्धक, एकोनाइट आदि अवसादक, एड्रिनलीन आदि वाहिनी-संकोचक हैं। इसीप्रकार रक्तोत्तेजक, हृत्पेशी परिपोषक, हृदय-अवसादक, वाहिनी पर काम करनेवाली औषधों का विस्तृत वर्णन है।

केन्द्रीय-तन्त्रिका संस्थान में—

मस्तिष्क, अनुमस्तिष्क, सुषुम्ना, चालक-तन्त्रिका, प्रभृत्यादि सम्मि-लित हैं। इस अध्यायमें शरीरोष्मा-नियन्त्रण, ऊष्मा विसर्जन, ऊष्मा-उत्पादन का वर्णन है। बाद में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव बताया है। विभिन्न प्रकार के ज्वरों में उपयोगी औषधों का विवरण देकर संज्ञानुभूति की क्रिया विधि बताई है। अन्त में वेदना-शामक औषधों का निर्देश किया है।

स्वायत्त-तन्त्रिका संस्थान— यह एक स्वतन्त्र अङ्ग है, जो वृ. मस्तिष्क के प्रभावसे मुक्त है। इसके सिम्पैथेटिक और पैरासिम्पैथेटिक ऐसे २ संस्थान हैं। इन पर कार्य करनेवाली पेटेण्ट औषधों और शास्त्रीय कल्पों को इस प्रकरण में देखिये। अन्त में अवरोधक द्रव्य जैसे एट्रोपिन आदि का विवरण है।

रासायनिक-चिकित्सा और संक्रामक-रोग चिकित्सा में—

मलेरिया, कालाजार, सिफलिस, एमेबिक डिसेन्ट्री, जैवाणिवक या शाकाणिवक रोगाणुसंक्रमण, यक्ष्मा-दिक, कुष्ठ आदि रोगों की विस्तृत चिकित्साका वर्णन है। बादमें बैक्टेरियल-संक्रमण की अपरा विभिन्न संक्रामक रोगों की चिकित्सा-विधि निर्दिष्ट की है। जिसमें सल्फा-औषधें, एण्टीबायोटिक्स, पेनीसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, डाईहाईड्रो-स्ट्रेप्टोमाइसिन, औरियोमाइसिन, टेरामाइसिन, क्लोरम्फेनिकोल जैसी प्रख्यात औषधों की खुलकर चर्चा की गई है।

विटामिन प्रकरण में—

जलविलेय और वसाविलेय विटामिन, विटामिन बी-२ या रिबोफ्लेविन, विटामिन बी-६ या पायरिडौक्सिन, निकोटिनिक एसिड, पेन्टोथिनिक एसिड, विटामिन बी-१२, फौलिक एसिड, पारा एमाइनोबेन्जोइक एसिड, विटामिन-सी, विटामिन पी, विटामिन ए, विटामिन डी, विटामिन ई, और विटामिन के। इनसबके प्रयोग इस प्रकार दिये हैं कि यह 'विटामिन' पर पुस्तक ही बन गई है।

वैद्य पं. चन्द्रशेखर शास्त्री, लाखाभवन, पुरानीचरहाई, जबलपुर।

*   *   *   *

— इस ग्रन्थराज की विषय-सूची —

संक्षिप्त विषय-सूची

आप से अपनी

इस पुस्तक में क्या है ? ११-१४

विषय-सूची १५-२०

रोग और औषध-क्रमिक सूची २१-२४

कतिपय परिभाषायें २५

मेटेरिया-मेडिका — फार्माकोलोजी

फार्मेसी (भैषज्य-निर्माण)

औषधों के उद्गम मार्ग २६

कार्बनिक (सेन्द्रिय) — अकार्बनिक (निरिन्द्रिय)

आलत्वनिक मूलक — आन्तय-मूलक

संश्लिष्ट-समास — अम्ल, लवण, क्षार,

अल्कलायड्स, ग्लूकोसाइड — हार्मोन्स, वसा तैल

स्थिर, उड़नशील, खनिज तैल

औषध-निर्माण (१८ प्रकार) ३१

अग्निशोषण, कूटना — तपाना-भस्मीकरण, दैक्सिकन

क्वाथ, फाण्ट, विरंजन — न्यासलेपण, मृदूकरण
निस्सारण, गलन — घन-घनसत्व, मृदूभीकरण
क्षरण, शल्कीकरण — भावना, विलयन
ऊर्ध्वपातन

ब्रिटिश-फार्माकोपियानुसार औषध-निर्माण की १२ विधियाँ ३२

एका (जल), कैप्सुल्स — इन्जैक्शन, लिनिमेन्टस
मिक्सचर, पिल्स (गोली) — प्लास्टर (प्रलेप), स्पिरिट्स
सपोजिटरी (गुदवर्ति) — सिरप (शर्बत)
टेबलेट् (टिकिया) — अन्य साधारण

औषध अवचारण की विधियाँ ३७

पाचन-पथ — आमाशय और आंत्र
गुदमार्ग — श्वसन मार्ग
त्वगीय मार्ग — विद्युत्लेपण द्वारा
अधस्त्वगीय-मार्ग से — पेश्यभ्यन्तर इन्जैक्शन द्वारा
सिराभ्यन्तर इन्जैक्शन — सीरम या लसीका-कुल्याओं द्वारा
नेत्रकला, कर्ण — मूत्राशय या मूत्रनली से

औषधों की क्रिया-विधि और औषध अवचारण-काल ४२

औषध-क्रिया के २१ कारक — विविध विशेष ज्ञातव्य
मात्रा, आयु, शरीर-भार — लिङ्ग, सहिष्णुता
अवचारण विधि व काल — अवशोषण, उत्सर्जन
संचय, संचय-क्रिया — रोग, औषध अवचारण काल
सहकार्यता, परस्पर-विरोध

क्रियावैषम्य या गुण-विरोध ४९

भौतिक गुण-विषमता — रासायनिक क्रिया-वैषम्य
आठ प्रकार के परिहार्य — भैषजिक विषमता

मान-माप विज्ञान ५२

दशमलव प्रणाली — आयतन का माप
लम्बाई का माप — इम्पीरियल मान
घरेलू माप — परिवर्तन या परिशुद्धि

परिवर्तन तालिका

आन्त्र आमाशय पथ पर कार्य करनेवाली औषधियां ... ५६

आमाशय व आंतों के कार्य — पित्त के कार्य
पाचन-क्रिया — छोटी आंतों में पाचन-क्रिया
भोजन का अवशोषण

आमाशय पर प्रभावक औषधें ... ६२

तिक्तवर्ग क्षुधावर्धक दवायें — जेनशियन
औरेन्शाइकोर्टेक्स टिंचर — वायुनाशक औषधियां
अम्लनाशक औषधियां — अम्लनाशक पदार्थ
वमनकारी औषधें — वमन-नाशक औषधियां
आंतों पर काम करनेवाली औषधियां — विरेचक औषधों का उपयोग
आंत्रीय कषाय औषधियां — कृमिनाशक औषधियां
आंत्रकृमियों का जीवन-वृत्त

श्वसन-संस्थान पर प्रभावक औषधें ... ७१

अन्तःश्वसन — बहिःश्वसन
श्वसन-क्रिया का नियंत्रण — फेफड़ों श्वास नलियों का तंत्रिका प्रदाय
आक्सीजन का महत्व — श्वासरोधजन्य आक्सीजन-न्यूनता
कफ-प्रतिलेप — कफ-सारक औषधियां
कफ-शामक औषधियां — आक्षेप-निवारक औषधियां
उत्तेजक शक्तिवर्धक औषधें

मूत्र-संस्थान पर कार्य करनेवाली औषधें ... ८०

वृक्क या गुर्दा — सूक्ष्म-संरचना
रुधिर-सम्भरण — वृक्क के कार्य
मूत्रोत्पत्ति या मूत्र बनना — मूत्रल या मूत्रवर्धक औषधें
रक्तपरिभ्रमण वर्धक औषधें
लवण-गुण के कारण कार्य करनेवाली औषधें
अम्लता उत्पन्न करके
वृक्क पर स्थानीय रूप से कार्य करनेवाली औषधें
चिकित्सात्मक व्यवहार — रोगाणु-नाशक औषधियां
निदानात्मक प्रयोग के लिये व्यवहार की जानेवाली औषधियां

— रोग और औषध-क्रमिक सूची —

अकालजनन १३९ | अग्निदग्ध १२१
अतिसार ६७, १३२, १४३ | अत्यधिक रक्तस्राव १४८
अम्लता ६३ | अवरोधक द्रव्य १०३
अवरोधीय कामना १४८ | अशक्ति १३२
अस्थिक्षय १४० | अस्थिभङ्ग घाव १५१
अस्थिमृदुता १४४ | अस्थिवक्रता १४५
आक्सीजन ७६ | आन्त्र-आमाशय-पथ-विकार १३६
आन्त्र-कृमि ६६ | आन्त्र-विकार ५६
आन्त्र-आमाशय प्रदाह १३० | आमाशय विकार ५६
आमवात १४१ | आलातिसार १४३
आशंकित गर्भपात १४६ | आक्षेप ७६, १०४-५
इन्फ्लुएन्जा १२७ | उत्तेजक औषधें ७५
उद्दीपक योग ६६ | एमेबिक डिसेन्ट्री ५०, १०८
एलर्जिक अवस्था १४१ | अंकुश-कृमि ६८
कड़वी औषधों का स्वाद-गन्ध छिपाना २६ | कफ-प्रतिक्षेप ७७
कफशामक ७८ | कफकारक औषधें ७६
कम्पवात १३५ | कालाजार १०८, १११से११३
काली खांसी १०४, १३५ | कृमिरोग ६७
कुष्ठ १०८ | केन्द्रीय-शामक योग ६५
केन्द्रीय कफकारक योग, ७९ | गर्भस्राव-गर्भपात १४६
गर्भ-संस्थापक १४५ | गर्भिणी-वमन १३४-५
गनोरिया १२१, १२४, १२६ | गलशोथ १३०
गैसवात १३९ | ग्रैन्युलोमा १२६
ग्रन्थि (आंत्र, गला, ग्रैव) स्राव वर्धक १०३ | ग्रन्थिक-प्लेग १२१, १२७
चर्मरोग १२६, १४१, १४३, १४६ | ज्वर ६५
जैवाणविक रोगाणु-संक्रमण १०८, १३५ | टाइफस १३६
टाइफाइड १३६ | टिटैनी १३४
ट्युबरकुलोसिस १४४ | टॉन्सिलाइटिस १३६
ट्राइकुराइसिस ६८ | डिप्थीरिया ११७, १३६, १४१

विरेचक (कब्जहर) ६५ — विष प्रतिकारक १०५, १४०-१

वर्तुल-कृमि ६८-९ — वन्ध्यत्व १४६

वायुविकार ६३ — वृक्क रोग ८६

वृद्धावस्थाजन्य आर्तव-दोष १४६ — वृद्धावस्थाजन्य योनिकण्डूयन १४८

व्रण १२१ — वेदना ८६

शक्तिवर्धक ७९ — शरीर-वृद्धि अवरोध १३५, १४७

शाखायिक रोगाणु-संक्रमण १०८ — शिशुकीय कामला १४८

शुष्काक्षिपाक १४३ — शूलरोग १०५

श्वसन-संस्थान के रोग १४२ — श्वसन-केन्द्रोत्तेजक १०४

सन्धिवात १४५ — स्थानीय दाहक ६४

सिरदर्द १३२ — सिफलिस १०८

सिरारोग १३६ — सिस्टोसूम वर्ग के कृमि ६८

सूत्रकृमि ६८,७० — संक्रामक रोग ११७, १४१, १४३

स्कर्वी १४०-१ — स्मरणशक्ति की कमी १३३

हरपीज जोस्टर १२९, १३० — हृद्रोग १२२

हृदय-शूल १३६ — हृदय-बलकारक ८९, ९०

हृदयावसादक ८९ — हृदयवाहिनी-संकोचक ८९, ९२

हृदयवाहिनी पर प्रभावक ९०, १४० — हृदयोत्तेजक ८९

हृत्पेशी-परिपोषक ९० — क्षुधावर्धक ६२, १३१

वाहक नाड़ीतन्तुओं के उद्दीपक ७८

सरल औषध-विज्ञान

प्रथम-अध्याय

परिभाषायें—

मेटेरिया मेडिका (Materia Medica)

मेटेरिया मेडिका (निघंटु या द्रव्यगुण विज्ञान) रोगों की चिकित्सा निमित्त व्यवहृत सभी औषधियों (प्राकृतिक तथा संश्लिष्ट) तथा द्रव्यों के गुण और क्रियाओं का वर्णन करनेवाले विज्ञान को कहते हैं।

फार्माकोलोजी (Pharmacology)

भैषजिकी, औषधिकी, औषध-विज्ञान, कायानुतन्त्र या औषध-क्रिया विज्ञान या औषध प्रभाव विज्ञान, प्राणी-शरीर पर स्वस्थ और वि[illegible]-रोगी अवस्थाओं में औषधियों द्वारा उत्पन्न क्रियाओं और प्रभाव का वर्णन करनेवाले विज्ञान को कहते हैं।

भैषज्यनिर्माण या फार्मेसी या औषधनिर्माण —

Pharmacy:— औषध-निर्माण विधियों और औषधियों को चिकित्सा में व्यवहार होने योग्य रूप में प्रस्तुत करने की कला और विज्ञान को 'भैषज्य निर्माण-विज्ञान' कहते हैं।

इसके दो भाग होते हैं—

समयोजित या तत्क्षणकृत औषध निर्माण—
(*E*xtemporaneous pharmacy):—

जिसमें चिकित्सकों द्वारा लिखे गये नुस्खों या व्यवस्थापत्रों के अनुसार उसीसमय औषधयोजन और वितरण किया जाता है।

शास्त्रीय या अधिकृत फार्माकोपिया, भेषज संहिता या भेषज संग्रह-ग्रन्थ, आफिशियल फार्माकोपिया (Official pharmacopia)—

रोग-चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों तथा औषधियों का संघटन, निर्माण, सक्रियता आदिमें एकरूपता लानेके लिये साधारणतः प्रत्येक देशमें विधान द्वारा एक ऐसा मंडल या संस्थान बना दिया जाता है, जो उपरोक्त ग्रन्थ या संहिता प्रकाशित करता है। जिसमें उल्लिखित शास्त्रीय-विधि और आदेश के अनुसार निर्धारित परिशुद्धि और प्रतिमानकी औषधियां प्रस्तुत करना प्रत्येक औषध-निर्माताके लिये अनिवार्य होता है। उदाहरणार्थ:— ब्रिटिश साम्राज्य में ब्रिटिश फार्माकोपिया (British pharmacopia or B. P.) का व्यवहार होता है।

* * *

द्रव्यों या औषधियों के उद्गम और प्राप्ति—
(Origin and sources of drugs):—

चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होनेवाली औषधियां उद्गम या मूलस्रोत (Source) के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित की जाती हैं:—

१ अकार्बनिक या निरिन्द्रीय (Inorganic) जैसे विविध धातु, गन्धक, खनिज लवण आदि।

२ कार्बनिक या सेन्द्रीय (Organic) यह दो प्रकार का होता है—

(क) वानस्पतिक मूल का (Vegetable origin) जैसे— जड़ी-बूटियों तथा वृक्षों के मूल, छाल, पत्ते, फूल, फल, बीज तथा रस आदि से प्राप्त होने वाली औषधियां।

(ख) जान्तवमूल का (Animal origin) जैसे— विभिन्न ग्रन्थि निस्सार (Glandular extrects), पेप्सिन, हार्मोन्स या ग्रन्थि

.. रस (hormones)- आदि ।

३ संश्लिष्ट समास (Synthatic products) जैसे— सैपाक्रिन पैल्युट्रिन, ईथर, क्लोरल हाइड्रेट आदि ।

अकार्बनिक औषधियां (Inorganic drugs)

का सुनिश्चित और ज्ञात संरचना होती है, जिसे इनके रासायनिक सूत्रों द्वारा व्यक्त किया जाता है । इसके विपरीत—

कार्बनिक योगों या समासों की संरचना—

अधिक जटिल होती है और इनमें कई पदार्थों की संरचना अभी तक ज्ञात नहीं हो सकी है । इस श्रेणी में अम्ल, भस्म (base) या पीट, अल्कलायड्स (alkaloids)लवण, एल्ब्युमिनसपदार्थ albuminons matters, श्लेष्म, सेल्यूलोस, रञ्जक द्रव्य, टैनिन, सैपोनिन, ग्लाइकोसाइड्स, गम्स, गम-रेसिन (glycosides gums and gum risins) स्थिर और उड़नशील तेल, शर्करा, श्वेतसार या स्टार्च, किण्व थिकर, रूधिरस, ग्रन्थिनिस्सार आदि हैं । जैसा कि कहा जा चुका है, ये समास वानस्पतिक और जान्तव दोनों ही स्रोतों के हैं ।

अम्ल (acids)— हाइड्रोजन के लवण (salt) होते हैं और ये भस्मों (base) के साथ संयुक्त या उन्मुक्त रहते हैं ।

भस्म (bases)— ये पदार्थ हैं, जो अम्लों के साथ मिलकर लवण बनाते हैं । ये दो प्रकार के होते हैं । १ साधारण २ यौगिक ।

लवण (salts)— अम्ल तथा भस्मों के समास या यौगिक होते हैं ।

अल्कलायड्स (alkaloids)— ये नाइट्रोजनयुक्त समास हैं, जो क्षारीय प्रकृति के होते हैं और अम्ल के साथ मिलने पर लवण बनाते या उत्पन्न करते हैं । अधिकतर अल्कलायड्स ठोस या घन (solid) और अवाष्पशील (non-volatile) होते हैं । ये जल और आल्कोहल में अविलेय; किन्तु ईथर, क्लोरोफार्म और तेलों में सुविलेय होते हैं । ये बहुत तिक्त (bittir) होते हैं । इनकी संरचना अत्यन्त जटिल होती है । कुछ अल्कलायड निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त होते हैं:—

(१) पाइरिडीन (pyridin) जैसे— निकोटिन ।

(२) क्विनोलिन (Quinolin) क्वीनीन, क्विनिडिन, सिन्कोनिन ।
(३) आइसोक्वीनोलिन (isoquinolin) पापावेरिन ।
(४) फेनान्थ्रिन (phenanthrin) मोर्फीन, कोडीन ।

वानस्पतिक अल्कलायड्स (vegetable alkaloids) पौधों के जड़ (root) और बीजों में अधिक मिलते हैं । आन्तव मूल के भस्म (bases) ल्यूकोमेन्स (जैसे एड्रिनलीन) टोमेन (ptomain) एमाइन्स (amines) आदि हैं । अनेक अल्कलायड कृत्रिमरूप में भी संश्लिष्ट होते हैं ।

प्रकिण्व और किण्व (enzymes & ferments):— ये ऐसे पदार्थ हैं जो प्रकियाओं में स्वयं भाग नहीं लेते हुये भी रासायनिक परिवर्तन किया करते हैं । ६० अंश तापमान द्वारा ये नष्ट हो जाते हैं ।

उदाहरण:— लैक्टेस, माल्टेस, सूक्रोस आदि जो लेक्टोस, माल्टोस और शर्करा को ग्लूकोस आदि में परिणत कर देते हैं ।

हार्मोन्स या ग्रन्थिरस (Hormones):— साधारणत: ये शरीर की अन्त:स्रावी-ग्रन्थियों के रस होते हैं, जो अतिसूक्ष्म या अत्यल्प मात्रामें भी अत्यन्त सक्रिय और प्रभावकारी तथा अपनी-अपनी विशिष्ट क्रियायुक्त और फलोत्पादक होते हैं ।

वसा, स्नेह और तेल (fats and oils) ये विभिन्न प्रकार के होते हैं और अनेक प्रकार या रूपमें चिकित्साके लिये व्यवहार किये जाते हैं

तेल तीन प्रकार के होते हैं:— (१) स्थिर (fixed) (२) वाष्पशील या उड़नशील (volatile) (३) खनिज तेल जैसे पेट्रोलियम ।

स्थिर तेल, वसा और चर्बी (fixed oils & fats) ये मुख्यत: ओलीन (olein), पामिटिन (palmitin) व स्टियरिन (stearin) आदि द्रव्यों के मिश्रण होते हैं । ये जल और आल्कोहल में अविलेय; किन्तु ईथर, क्लोरोफार्म, कार्बनडाईसल्फाइड आदि में सुविलेय होते हैं । क्षारों के साथ ये साबुन (soap) और ग्लीसरीन (glycerin) बनाते हैं । वसामें स्टियरिन और पामिटिन का अनुपात अधिक रहता है, जिसके कारण साधारण ताप पर ये ठोस या घन होते हैं । ये वाष्पशील नहीं होते, इसलिये इनका आसवन (distillation) नहीं

होता और अधिक ताप पर ये विघटित हो जाते हैं। ये प्रशामक और पौष्टिक तथा परिपोषक तत्व हैं। मक्खन, चर्बी, स्वेट(suet) काडलिवर आयल आदि जान्तव मूल के हैं, किन्तु बादाम, तिसी या अलसी, रेंडी, जैतून व कोकोआ-बटर (almond, linseed, castor, olive oils & cocoa-butter) आदि अधिकांश तैल वनस्पति-मूलक होते हैं।

उड़नशील तेलों में — एक विशेष सुवासी-तत्व (aromatic substance) होता है, जिसके कारण ये सुवासित या सुगन्धित तैल (essentialoil) भी कहलाते हैं। यह आसवन द्वारा साधारणतः प्राप्त किये जाते हैं। फूल, फल, बीज और पत्तों में ये अधिकतर पाये जाते हैं। सुगन्धित या सुवासी गुणों के कारण, खराब और कड़वी औषधियोंका स्वाद तथा गन्ध छिपानेके लिये इनका व्यवहार होता है। ये वाष्पशील होते हैं और इसलिये इनका आसवन किया जासकता है। ये अधिकतर जल-विलेय होते हैं। कपूर, पिपरमेन्ट, थाइमोल, तारपीन का तैल, दालचीनी, इलायची, लौंग आदि के तैल इसी वर्ग में आते हैं

लिपायड्स, लिपीन्स, लाइपिड्स आदि (Lipoids, Lipins, Lipids etc)— कोलेस्टेरोल, लेसिथिन, फास्फोलिपिन्स आदि इसी वर्ग में आते हैं। वसा के समान ये भी ईथर, क्लोरोफोर्म, आल्कोहल आदि में सुविलेय होते हैं। तन्त्रिक-कलाओं (nervous tissues) में ये अधिक पाये जाते हैं।

अनेकानेक 'संश्लिष्ट और यौगिक समास' आजकल रोगचिकित्सा के लिये व्यवहृत होते हैं; जैसे- मेपाक्रीन, कैमोक्वीन, यूरिया स्टिबामाइन इमीन, फेनिकोल, सल्फोनामाइड्स वर्ग की औषधियां, डी डी टी तथा अन्य कीटनाशक या पूतिनाशक औषधियां, मन्थिरस या निस्सार आदि

* * *

— दूसरा अध्याय —

— औषध-निर्माण —

(preparation of drugs)

प्राकृतिक-रूप में उपलब्ध औषधीय-द्रव्य या पदार्थ साधारणतः उसी रूप में चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होने के लायक नहीं होते। इस लिये अनेक विधियों और वैज्ञानिक नियमों तथा निर्देशों के अनुसार उनको परिष्कृत और शुद्ध करके व्यवहार के योग्य बनाना पड़ता है। इस कार्य के लिये निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है:—

(१) अधिशोषण (absorption) या तलीय-संघनन जैसे— जैव-चारकोल (animal charcoal) द्वारा अनेक विलयनों का विरञ्जन (decolouration)। इसमें कोई रासायनिक प्रक्रिया नहीं होती, बल्कि अधिशोषक के सम्पर्क में आने पर वह वस्तु या द्रव्य उन पर स्थिर (fixed) हो जाता है।

(२) कूटना (bruising or contusion)— जिसमें कठोर काष्ठ, कोमल और रसवाले पदार्थों को कूट-काटकर इस रूप में बना देते हैं कि जिससे इनका कषाय, फांट, काढ़ा आदि तैयार किया जा सके।

(३) निस्तापन (calcination), भस्मीकरण (incineration) इस क्रिया में मूषा (crucibh) में औषधीय पदार्थों को रखकर भाड़ (furnace) पर बहुत अधिक तापमान पर गर्म करते हैं, जिससे उनका जलीय अंश और उड़नशील या वाष्पशील तत्त्व निकल जाता है।

(४) क्रिस्टलन (crystallisation):— इस क्रिया द्वारा औषधियाँ स्फटिक रूप में प्रस्तुत की जाती हैं।

(५) क्वाथ या कषाय (decoction):— इस क्रिया में वानस्पतिक औषधियों को जल में उबालकर काढ़ा तैयार किया जाता है।

(६) फान्ट या निषेक (infusion):— इस क्रिया में वानस्पतिक औषधियों को केवल ठण्डे जल में भिगोते या फुलाते हैं।

(७) विरंजन (decolouration):— इस क्रिया द्वारा अनेक औषधियों का रंग दूर करते हैं। औषधियों के विलयन को विरंजक द्रव्यों द्वारा विरञ्जित करके बाद में निस्यन्दकों द्वारा छान लेते हैं।

(८) पारपृथक्करण या व्याश्लेषण (dialysis):— इस क्रियामें अर्धपारगम्यकला (semipermeable membrane) की सहायता से कलिल (colloids) और रवेलाभ (crystalloids) द्रव्यों को विलग या पृथक् करते हैं।

(९) परिपाचन या मृदुकरण (digestion or maceration) इस क्रिया में वातावरणीय ताप से कुछ अधिक ताप पर औषधीय या औषध युत पदार्थों को पाचित करके मृदु बनाते हैं।

(१०) निष्कर्षण या निस्सारण (expression or extraction इस क्रिया में कर्षक-यन्त्रों की सहायतासे तेलहन से तेल, पत्तोंसे रस और अनेक औषधीय द्रव्यों से सत्व निकालते हैं।

(११) संगलन (fusion), गलन (melting) या द्रवीकरण (liqui faction):— इस क्रिया में घन या ठोस पदार्थों (solids) को गर्म करके तरल बनाते हैं। यह क्रिया किसी पात्र में उस वस्तु को रखकर अग्निवाला, वाष्प या बालू-उष्मक (sandbath) पर गर्म करने से होता है। इस तरीके से प्रलेप, मलहम, गुदवर्ति (plasters ointment, suppository) आदि बनाये जाते हैं।

(१२) क्षारविरेचन या क्षिविस्रवियेशन (lixiv ation) — इस क्रिया द्वारा किसी ठोस या घनमिश्रण या समास से लवणों को विलग किया जाता है। पहले उस मिश्रण को जलमें घोल दिया जाता है, बाद में जलीय घोल या मिश्रण को निथार (dacant) किया जाता है। अब उसका उद्वाष्पन करके शुष्क अवशेष (residue) के रूप में लवण विशेष प्राप्त होता है।

(१३) मृदुलीकरण या मैशेरेशन (maceration):— इस क्रिया में आल्कोहल या अन्य किसी विलेयक में किसी वस्तु विशेष को भिगो कर उसका सत्व या सक्रिय और विलीन तत्व अलग कर लेते हैं। इसे

गर्म नहीं किया जाता।

(१४) स्रवण, टपकना, रिसना (percolation):— इस क्रिया में तरल विलेयक को किसी चालक (percolator) द्वारा स्नान कर निस्यन्दन द्वारा विलीनतत्वों को पृथक कर लेते हैं।

(१५) शल्कीकरण (scaling):— इस क्रिया में कांच के पट्टों पर पतले परत के रूप में औषधियों के सान्द्रित विलयन को पसारकर सुखाते हैं और सूख जाने पर खुरच कर एकत्रित कर लेते हैं।

(१६) चालना (sifting or sheiving):— इस क्रियामें झांझर या चलनी (sheive) द्वारा चाल कर किसी विचूर्ण के विभिन्न आकार के कणों को पृथक करते हैं। यह चलनी लोहे या और किसी वस्तु या साधारण मलमल की हो सकती है।

(१७) विलयन (solution):— इस क्रिया में किसी ठोस या घन वस्तु को तरल विलेयक में घोलते हैं। साधारणतः किसी ताप पर अधिकतम मात्रा में विलेय को विलीन कर लेने पर वह घोल सान्द्रित या संकेन्द्रित विलयन कहलाता है। ताप बढ़ाने या गर्म करने से साधारणतः विलेयक गुण में भी वृद्धि होती है।

(१८) ऊर्ध्वपातन (sublimation):— इस क्रिया में किसी ठोस वस्तु (solid) को पहले वाष्पायन (vapourisation) करके फिर बाद में उसका संघनन (condensation) करके पुनः प्राप्त करते हैं।

ब्रिटिश-फार्माकोपियानुसार औषध-निर्माण-विधियां

(१) जल (aqua):—

ये दो प्रकारके होते हैं:— (क) सुगन्धितजल aromatic waters यह जल कोई सुगन्धित द्रव्य मिलाकर बनता है। (ख) इञ्जैक्शन के लिये परिस्रुत जल (distilled water for injection)

(२) कैप्स्युल्स (capsules)

ये जीलेटिन (gelatin):— नामक पदार्थ का बना हुआ एक लिफाफा या खोली होता है। जिसमें कड़वी, वमनकारक और तिक्त

औषधियां भरकर बन्द कर दी जाती है। इसको निगलने पर दवा का स्वाद मालूम नहीं पड़ता। आमाशय में यह खोलो पाचकरस की क्रिया द्वारा अपने आप गल जाती है।

(३) इञ्जैक्शन (injections) या सूचि या सुई

ये परिस्रुत जल में परिष्कृत औषधियों के विलेय (solution) या प्रलम्बन (suspention) होते हैं, जो अधस्त्वगीय (subcutaneous), पेश्यभ्यन्तरीय (intramuscular) या सिराभ्यन्तरीय (intravenous) मार्ग से इञ्जैक्शन द्वारा शरीर में प्रविष्ट कराये जाते हैं। ब्रिटिश फार्माकोपिया में ७५ इञ्जैक्शन हैं, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:—

एड्रीनलीन, एथेनोलमीन ओलियेटिस Aethanolamine oleatis
एन्युरिन-हाइड्रोक्लोराइड (aneurin hydrochloride)
एन्टीमोनी-एट्-पॉट-टार्ट्रेट (antimony et pot tartrate)
एन्टीमोनी-एट-सोडी-टार्ट्रेट (antimony et sodi tartrate)
एट्रोपिन सल्फेट (atropine sulphate), बिसमथ (Bismuth),
बिस्मथ-ऑक्सीक्लोराइड, बिस्मथ-सैलिसलेट,
कैफिन एट सोडी-बेन्जोआस, कैल्शियम ग्लूकोनेट,
कार्बाकोल, डीऑक्सी-कॉर्टोन एसिटेट
डिजोक्सीन, एमेटिन-हाइड्रोक्लोराइड
हेपारिन, हेक्सोबार्बिटोल सोडियम हायोसन हाइड्रोब्रोमाइड
इन्सुलिन, लेप्टाजोल, मर्सेलिल,
मार्फिन-एट-एट्रोपिन, मार्फिनसल्फेट, नियोआर्सफेनामिन,
निकेथेमाइड, इस्ट्रेडियोल मोनोबेन्ज़ोआस,
बायलहिड्रोकार्पस, आरिसटोसिन, पेनिसिलिन,
पेथीडिन-हाइड्रोक्लोर, पिक्रोटोक्सिन, पोस्टपिट्यूटरी,
प्रोजेस्टेरोन, क्वीनिन बाई हाइड्रोक्लोराइड
सोडीक्लोराइड, टेस्टोस्टेरोन प्रोपियोनेट, थायोर्मसीन

(४) लिनिमैन्ट्स, लेप या मालिश की दवायें liniments

ये दवायें त्वचा पर रगड़ने (घर्षण) या लेप के लिये दर्दनाशक

उद्दीपक, प्रत्युद्दीपक तथा उपशामक गुणों के कारण प्रयुक्त होती हैं साधारणतः तेल या अल्कोहल में कपूर तथा अन्य दवायें मिलाकर ये बनती हैं। ब्रिटिश फार्माकोपिया में निम्नलिखित ६ लिनिमेंट्स हैं:—

लिनिमेन्ट एकोनाइट, बेलाडोना, कैम्फर, कैम्फर एमोनियेटम, सेपोनिस तथा टेरीबिन्थ हैं।

(५) मिक्सचर या मिश्रण (mixtures)

जल में अनेक औषधियों को घोलकर ये मिश्रण बनते हैं। स्वादिष्ट बनानेके लिये इसे मीठा और सुगन्धित बना दिया जाता है। ये आन्तरिक प्रयोग या पीने के लिये व्यवहृत होते हैं। ब्रिटिश फार्माकोपिया में निम्नलिखित दो मिश्रण हैं:— मैग्नेशियम हाइड्रोक्लोराइड और सेना-कम्पोजिट मिक्सचर। इनके अतिरिक्त चिकित्सकोंके नुस्खोंके अनुसार असंख्य प्रकार के मिक्सचर बन सकते हैं।

(६) गोली या गुटिका (pills)

औषधिक-द्रव्यों से युक्त ये गोलियां प्रायः गोलाकार होती हैं। निगलने के बाद पेट में पहुंचने पर ये स्वयं ही गल जाती हैं। कड़वी और कुस्वादु गोलियों पर चीनी का लेप या आवरण चढ़ाकर उनका स्वाद बदल दिया जा सकता है। इसीतरह जिन गोलियों को मुंह या आमाशय में नहीं गलने देना अभीष्ट होता है, उनपर केराटिन (keratin) का लेप चढ़ा दिया जाता है। ब्रिटिश फार्माकोपिया के अनुसार निम्नलिखित गोलियां हैं:—

पिल्युला एलोज (pillula aloes) कोलोसिन्थ एन्ड हायसाइमस, फेरि कार्बोनेट, हाइड्रार्जीइरी और शाई कम्पाउन्ड।

(७) प्रलेप या प्लास्टर:—

ये ऐसे अग्निदाही या चिपकदार पदार्थों से बनते हैं जो कपड़ा, चमड़ा या और कोई इसीप्रकार की वस्तु पर फैलाकर किसी अङ्ग या त्वचा पर चिपका देने से चिपक जाते हैं।

बहुत से प्रलेपों में औषधियां मिली होती हैं। इसके अतिरिक्त त्वचारक्षा, आधार और घाव के किनारों को निकट सटाये रखने के लिये भी इनका व्यवहार किया जाता है।

(८) स्पीरिट्स (spirits)

साधारणतः (व्यापारिक मेथिलेटेड स्पीरिट को छोड़कर) ये उड़नशील तेलों (volatile oils) और ईथर के आल्कोहल विलेय घोल या अर्क होते है। ये दो प्रकार के होते हैं:—

(१) सरल और (२) संयुक्त या मिश्रित।

सरल स्पीरिट्स सुगन्धित तेलों, ईथर या क्लोरोफार्म और ९०% अल्कोहल (alcohol) का घोल या विलयन होते हैं। मिश्रित स्पीरिट्स में अनेक द्रव्यों का मिश्रण होता है।

ब्रिटिश फार्माकोपिया के स्पीरिट्स निम्नलिखित हैं। जिनमें पहले ५ सरल और बाकी के दो मिश्रित हैं:—

(१) स्पीरिट इथरिस, काजुपुट. कैम्फर, क्लोरोफार्म. मेन्थपिप

(२) स्पीरिट इथरिस, नाइट्रोसि, स्पीरिट एमोन एरोमैटिकस।

(९) सपोजिटरी या गुदबर्त्ति (suppository)

गुदामार्ग या योनिमार्ग (anus or vagina) द्वारा व्यवहार किये जाने के लिये, यह औषधि युक्त स्थूल शंखाकार (conical) पिंड होता है (साधारण छोटी मोमबत्ती जैसा) ग्लीसरिन की बत्तीके सिवाय अन्य बत्तियां थियोब्रोमिन के तेल से बनती हैं और प्रायः एक ग्राम भार की होती हैं। शरीर के अन्दर शरीरोष्मा द्वारा कुछ समय के अन्दर ही ये पिघल जाती हैं। ब्रिटिश फार्माकोपिया में निम्नलिखित १० बत्तियां हैं:—

सपोजिटरी एसिड टैनिक, बेलाडोना, बिस्मथसबगैलेट, कोकेन, ग्लीसरिन, हैमामेलिडिस, हैमामेलिडिस एट जिंक आक्साइड आयडोफोर्म, मोर्फिन और फेनोल।

(१०) सिरप या शर्बत (syrup)

स्वादिष्ट, रञ्जक और औषधीय तत्वों युक्त यह चीनी (शर्करा) का लगभग संतृप्त विलयन या घोल होता है (अधिक संकेन्द्रित रहने से यह खराब नहीं होता)। ब्रिटिश- फार्माकोपिया में निम्नलिखित १७ शर्बत होते हैं:—

सिरप थ्योरेन्साई, सिरप फेरीफॉस्फेटिस कम्पाउन्ड, ग्लाकोस-लिक्वीड, लाइमोनिस. ग्लूसिरोट. सिला, सेना, टोलु और सिरप-जिञ्जिबेरिस।

(११) टेबलेट, टिकिया या चक्रिका (tablets)

ये ठोस चक्रिकायें किसी औषध या औषधियों को सांचे में ढाल कर या दबाकर तैयार की जाती हैं। ब्रिटिश फार्माकोपिया में ४८ टेबलेट्स हैं:—

एसिटोमेनाथोनी, एसिडि एसेटिल सेलिसिलिक, एसिडि एसेटिल सैलिसिलिसि एट् फेनासिटीन, एसिड एस्कॉर्बिक, एसिड निकोटिनिक, एथिस्टेरोनी, एन्यूरिन हाइड्रोक्लोराइड, एट्रोपिन सल्फ, बार्बिटोन, बार्बिटोन सोडियाइ, कैल्शिलेक्टेटिस, कोडीनको, कॉडीनफास, डाइनो-स्ट्रोलिस, डिजिटलिस प्रिपरटा, डिगोक्सिनी, एफेड्रिन हाइड्रोक्लोर, अर्गटप्रिपराटा, ग्लीसरिलिस ट्राइनाइट्रैटिस, हेक्सोस्ट्रलिस, हाइड्रार्जिरि कम क्रीटा, हाइड्रार्ज सबक्लोराइड, आइपेकाकुआना एट ओपो-आई, मेपाक्रिन हाइड्रोक्लोर, मेथिलटेस्टोस्टेरोनि, मेथिलथायोयूरिया-सिलि, निकोटिनामाइडि, इस्ट्रोनि, फेनासेटिनि, फेनाजोनि, फेनोबार्बि-टोन और फेनाबार्बिटोन सोडियम, फेनोलफ्थेलिन, पोटैशियम ब्रोमाइड पोटैशियम क्लोरेट, क्वीनीन बाई सल्फेटिस, सोडिबाई कार्बोनेटिस को सोडिसाइट्रेटिस, सोडिसैलिसिलेटिस, स्टिल्बेस्ट्रोलिस, सक्सिनिल-सल्फाथियाजोल, सल्फाडायजिन, सल्फाग्वानिडिन, सल्फानिलामाइड, सल्फाथियाजोल, थायोयूरियासिल और थायराइडि।

कुछ अन्य साधारण कल्प या योगः—

(१) एन्टिटौक्सिन या प्रतिविषी सिरम—ये शरीर में विशेष रोगाणुओं के विष का नाश करने के लिये इन्जैक्शन द्वारा व्यवहार किये जाते हैं। बी. पी. में ६ एन्टिटौक्सिन सिरम होते हैं:— डिप्थेरिया, इडिमेटिस, इडिमेटिस को, सेप्टिकम, टिटैनिकम, वेल्चिकम

❀ तीसरा अध्याय ❀

— औषध अवचारण की विधियां —

(Mode of administration of drugs)

निम्नलिखित विधियों व मार्गोंसे औषधियां साधारणतः व्यवहृत होती हैं

(१) पाचन पथ (digestive tract)

सबसे अधिक इसी मार्ग से औषधियां व्यहृवत होती हैं।

(१) मुख (mouth):—

स्थानिक क्रिया के लिये— जैसे गार्गल या कुल्ली (gargle), पेन्ट या प्रलेप (paints), लाजेन्जेज (lozenges) ।

(२) परिपाचन पथ (alimentary tract):—

से अवशोषित होने के बाद रुधिर द्वारा सार्वदैहिक क्रियाके लिये। इन दोनों ही क्रियाओं के लिये मौखिक मार्ग से औषधियां दी जाती हैं।

(३) इसके अतिरिक्त मुख की श्लैष्मिककला या जिह्वातल (mucus-menbrane or sublingual) से अवशोषित होकर कार्य करने वाली औषधियां भी इस मार्ग से दी जाती हैं (जैसे नाइट्रोग्लिसरीन (nitroglycerin) । गलकन्द (pharynx) में औषधियां पेन्ट या प्रलेप (paint), पेस्टाइल्स (pestilles), फुहारा (spray) या छिड़काव या पुहारन (insufflation) आदि विधियों से व्यवहृत होती हैं।

(२) आमाशय और आन्त्र—

इस मार्ग का निम्नलिखित ३ कार्यों के लिये व्यवहार होता है:—

(१) औषधियों की स्थानिक क्रियाओं के लिये।

(२) आमाशय से अवशोषित होने के पूर्व परावर्त्तिक-क्रिया या प्रभाव के लिये।

(३) अवशोषित होने के बाद सार्वदैहिक प्रभाव के लिये।

रेचक औषधियोंकी क्रिया और असर अधिकतर आंतों पर होता है

(३) गुदमार्ग (through anus)—

इस मार्ग से स्थानिक तथा सार्वदैहिक (local and systemic) दोनों प्रकार की क्रियाओं के लिये औषधियों का प्रयोग होता है। जैसे गुदवर्त्ति या बत्ती (suppository) और बस्ति या अनीमा (enema)

इस मार्ग से प्रायः वे औषधियां दी जाती हैं, जिन्हें मौखिक मार्ग से देना वाञ्छित नहीं होता, या जिसकी क्रिया वा प्रभाव आमाशय या आंत्रों पर नहीं होने देना चाहते। कुछ संवेदनहारी औषधियां (anaesthetics) जैसे पैरालिडहाइड या ईथर (paraldehyde or aether) आदि भी इसी मार्ग से प्रयुक्त होती है। ग्लूकोज जैसे पौष्टिक द्रव्य भी इसी मार्ग से आवश्यकतानुसार दिये जाते हैं।

(४) श्वसन मार्ग (Respiratory tract)

इस मार्ग से स्थानिक, प्रत्यावर्त्तिक या सार्वदैहिक क्रिया के लिये औषधियों का प्रयोग होता है।

स्थानीय व्यवहार के लिये नस्य, नासिका में डालने के लिये तरल घोल, पेन्ट, फुहारा आदि के रूप में ये दवायें प्रयुक्त होती हैं। नाक या मौखिकमार्ग से अन्तःश्वसन (inhalation) द्वारा ईथर, क्लोरोफार्म या अन्य वायव्य संज्ञाहर औषधियां (gascous anaesthetics) संज्ञाहरण (बेहोश करने के लिये) के लिये और कार्बोजेन (carbogen, oxygen with 5% CO_2) मस्तिष्क के श्वसन-केन्द्र को उत्तेजित करने के लिये प्रयुक्त होती हैं। फेफड़ों से रुधिर द्वारा ये मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों पर पहुंचती हैं, जहां ये अपना कार्य करती हैं

रबर की नली या कैथेटर (catheter) द्वारा फेफड़ों में आयडिनयुत तेल प्रविष्ट कराकर एक्स-रे द्वारा फेफड़ों का चित्र लेते हैं। पाचन-पथ के अतिरिक्त किसी अन्य मार्ग से औषध-प्रयोग करने पर उसे व्यान्त्रिक प्रयोग (parentral use) कहते हैं। किन्तु साधारणतः इन्जैक्शन द्वारा दी जानेवाली औषधियों का ही इससे बोध होता है।

(५) त्वगीय मार्ग (through skin)

त्वगीयमार्ग से निम्नलिखित विधियों द्वारा औषधियां प्रयुक्त होती

हैं। स्थानीय क्रिया के लिये केवल उस स्थान पर त्वचा में औषधियों की मालिश कर या प्रलेप, प्लास्टर, पौल्टिस (poultice), गर्म सेक क्रीम या मलहम के रूप में या कभी-कभी सार्वदैहिक क्रिया के लिये भी मालिश का प्रयोग होता है। जैसे शिशुओं के रिकेट्स नामक रोग में काडलिवर आयल (cod liver oil) की मालिश।

अयनचालन या विद्युत्क्षेपण द्वारा:—

(ionaphoresis or cafaphoresis)

जिसमें प्रयोग किये जाने वाली औषध के घोलमें एक पैड भिगोकर रोगी के उस अङ्ग पर रखकर विद्युत धारा प्रवाहित कराई जाती है। चर्मस्तर में चर्माभ्यन्तर इन्जैक्शन (intracutaneous injection) द्वारा औषधि प्रवेश कराके जैसे डिप्थीरिया-विष (Diptheria toxin) द्वारा शिक्-परीक्षा (shick's test) मसूरिकरण (vaccination) या अन्तः क्रामण (inoculation) या टीका द्वारा।

(६) अधस्त्वगीय मार्ग से (अधस्त्वगीय इन्जैक्शन द्वारा)

(sbceutaneous route)

(७) पेश्यभ्यन्तर इन्जैक्शन द्वारा:—

(by intramuscular injection)

निम्नलिखित अवस्थाओं में साधारणतः इस मार्ग का व्यवहार होता है

(१) औषध की मात्रा अधिक होने पर।

(२) अधस्त्वगीय इन्जैक्शन की अपेक्षा और शीघ्र प्रभावोत्पादन अपेक्षित होने पर।

(३) अविलेय पदार्थों (जैसे बिस्मथ या पारद) या औषधियों के व्यवहार के लिये। इन औषधियोंका व्यवहार उन अवस्थाओंमें किया जाता है, जहां उनका दीर्घकालीन प्रभव वांछित होता है।

(८) सिराभ्यन्तर इन्जैक्शन:—

(by intravenous route)

इस मार्ग का प्रयोग निम्नलिखित अवस्थाओं में होता है:—

(१) जबकि औषध अत्यधिक उद्दीपक या प्रदाहजनक होने के

कारण अन्य मार्गों से नहीं दी जा सकती।

(२) आकस्मिक या आपात अवस्थाओं में रुधिर-वाहिका तन्त्र (circulatory system) में शीघ्रातिशीघ्र तरल, ग्लूकोस, लवणजल प्लाज्मा या रुधिर आदि पहुंचाने के लिये।

इसके अतिरिक्त रुधिर की प्रतिक्रिया में परिवर्तन या विशोधन के लिये जैसे अम्लता बढ़ जाने पर सोडी-बाई-कार्ब (sodi bi carb) का इन्जैक्शन या रक्तातञ्चन (blood clotting) के लिये कैल्शियम और विटामिन 'सी' का इन्जैक्शन।

(३) बैक्टेरियल या जैवाणिवकरोगाक्रमण (bacterialinvrsion) होने पर— जैसे— हेक्सामिन, सल्फोनमाइड या एन्टीटॉक्सिकसीरम (hexamine sulphonamide or antitoxic serum etc) आदि का प्रयोग।

(४) कालाजार और मलेरिया जैसे प्रजैवाणिवक (protozoal) रोगों में एन्टीमोनी या क्वीनीन (antimony or Quinine) आदि का व्यवहार।

(५) हार्दिक या रुधिर वाहिकातन्त्र की क्रियालोप (cardiac or circulatory failure)।

(६) सार्वदैहिक संवेदनाहरण (general anaesthesia)के लिये।

(७) शिरा-शोथ (vericose veins)के स्थूलीकरण (sclerosis) के लिये क्विनीन, यूरेथेन् आदि औषधियों का प्रयोग।

(८) रोगविशेषके निदानके लिये आयडोक्सिल या इन्डिगोकार्मिन iodoxil or indigocarmin) आदि औषधियों का प्रयोग।

नोट:— निषेध या प्रतिदृष्टि (contraindication)

निम्नलिखित अवस्थाओं में इस मार्ग का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

१ अम्ल तथा धात्विक लवण (metallic salts) रुधिर के साथ अमिश्रणीय होते हैं, इसलिये इस मार्ग से इनका प्रयोग नहीं होता। प्रदाहजनक द्रव्य सिरा में सूजन, सौत्रिकरण (fibrosis) तथा सिरा-रोध (thrombosis) उत्पन्न कर सकते हैं, अतएव इन्हें भी इस मार्ग से प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(९) सीरस या लसीका-कुल्याओं द्वारा—

(through serous cavities):—

ये कुल्यायें स्थानीय औषध अवचारणके लिये विशेष उपयुक्त होती हैं

१ फुफ्फुसावरण गुहा (pleural cavity) पीव या पूय (pus) या जलसंचय होने पर उसे निकालकर पेनिसिलिन या स्ट्रेप्टोमाइसीन (penicillin or streptomycin) आदि औषधियों का विलेय इञ्जेक्शन द्वारा इसमें दिया जाता है।

२ औदर्यागुहा (peritoneal cavity)— अवसन्नता या शिथिलावस्था (collapse) में इस मार्ग से लवण जल या रक्तप्रभा दिया जाता है। रोगाणुसंक्रमण होने पर कभी-कभी इस मार्गसे जीवाणु द्वेषी या एन्टिबायोटिक औषधियां (antibiotics) दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त उदर के शल्यकर्म (operation) के समय इसमें जीवाणु या रोगाणु संक्रमण से रक्षा के लिये विविध औषधियां प्रयोग की जाती हैं।

(१०) नेत्र कला (conjunctiva)—

इस मार्ग से नाना प्रकार के नेत्र रोगोंकी चिकित्सा के लिये अनेक औषधियां प्रयुक्त होती हैं।

(११) कर्ण (ear)—

कान में स्थानिक प्रभाव या क्रिया के लिये औषधिया ईयर-ड्राप या इन्शफ्लेशन (eardrops or insufflations) के रूप में व्यवहृत होती हैं।

(१२) मूत्राशय या मूत्रनली में कैथेटर तथा बुची

(catheter or bougie):— द्वारा तथा गर्भाशय एवं योनिपथ में डूश, पेसरी, वर्ति या एनीमा द्वारा स्थानिक क्रियाके लिये औषधियां प्रयुक्त होती हैं।

इनके अतिरिक्त कटिवेध (lumber puncture) द्वारा मेरुदंड में, सुचिवेध द्वारा हृदय, उरोस्थि (sternum) या जंघास्थि (tibia) में भी तरल प्रक्षेपण या औषध अवचारण किया जाता है।

* चौथा अध्याय *

औषधियोंकी क्रिया-विधि और औषध-अवचारण-काल

— औषधियों के क्रिया-नियन्त्रक कारक —

(mode of action and time of administration of drugs)
(factors modifying action of drugs)

औषधियों की क्रिया वा क्रियायें अनेक कारकों पर निर्भर करती हैं जैसे— (१) मात्रा (२) आयु या उमर (३) लिङ्ग (४) आकार और शरीरभार (५) धातुप्रकृति या व्यक्तिगत प्रकृति (idiosyncrasy) (६) सहनशक्ति (tolerance) (७) आदत या अभ्यास (Habit) एलर्जी या व्युत्साहिक प्रवृत्ति (allergy) आदि (८)शरीरोष्मा (body temperature) (९) औषधिका स्वरूप व गुण आदि (१०) अवशोषण तथा निष्कर्षण दर (rate of absorption and excretion) (११) ऊत्तक रसों (tissue fluids) और रुधिर की प्रतिक्रिया (अनुकूलतम हाइड्रोजन अयन संकेन्द्रण) (१२) मानसिक अवस्था (१३) उपवास (१४) रोग (१५) जलवायु (१६) अवचारण विधि (१७) अवचारणकाल (१८) सञ्चय (acumulation) (१९) पारस्परिक विरोध तथा सहयोगिता (antagonism and synergism) (२०) प्रजाति (species) (२१) चिकित्सकीय अनुपात (therapeutic ratio) ।

मानव-शरीरमें औषधियां रुधिर ऊतकोंके साथ पारस्परिक अन्त क्रिया द्वारा शरीर में होने वाली प्रतिक्रियाओं को परिवर्त्तित करके या नूतन क्रिया उत्पन्न करके अपना प्रभाव उत्पन्न करती या कार्य करती हैं इन क्रियाओं को ये उत्तेजित या अवसादित करती हैं। अधिकतर औषधियों की चयनात्मक और विशिष्ट क्रिया होती है। (selective and specific action of drugs), जैसे कुछ औषधियां अरेखित पेशियों (plain muscle) पर कार्य करतीहैं, तो कुछ ऐच्छिक-पेशियों

पर। ऐसा सम्भवतः प्रतिचारी-कोषों और औषधियों के पारस्परिक आकर्षण के कारण होता है और इसी सिद्धान्त पर रासायनिक चिकित्सा आधारित है।

औषधियां अपना प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से (directly or indirectly) उत्पन्न करती हैं। स्थानिक क्रिया (local or topical action) प्रत्यक्ष सम्पर्क में आनेपर शरीरमें बिना अवशोषित हुए ही होती है। यह क्रिया उद्दीपक (irritative) या उपशामक sedative हो सकती है ।

अधिकतर औषधियां अवशोषित होकर सर्वाङ्ग में व्याप्त होने के बाद ही अपनी क्रिया या प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जिन्हें 'सार्वदैहिक प्रभाव (systemic effect) अप्रत्यक्ष या विलम्बित क्रिया (indirect or remote action)' भी कहते हैं।

बिना परिवर्त्तित हुए औषधियां जो प्रभाव उत्पन्न करती हैं, उन्हें 'मूलप्रभाव या क्रिया' कहते हैं, किन्तु शरीर में रूपान्तरित और परिवर्तित होने के बाद औषधियां जो प्रभाव उत्पन्न करती हैं, उन्हें 'गौण या आनुषङ्गिक क्रिया (secondary action) कहते हैं।

इतना ज्ञात होने पर भी अनेक औषधियोंकी निश्चित क्रिया-विधि ठीक-ठीक नहीं विदित हो सकी है। मनुष्य जीवन और स्वस्थ शरीरके अन्दर होनेवाली अनेक जटिल और सूक्ष्म रासायनिक, भौतिक और यान्त्रिक प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है। अतएव सम्भवतः इन्हीं क्रियाओं को किसी प्रकार प्रभावित करके औषधें अपना प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

ये औषधियां कोषप्ररस या प्रोटोप्लाज्म (protoplasm) में प्रविष्ट होकर उसके घटकों के साथ रासायनिक संयोग स्थापित कर उसकी क्रियाओं मे भी तदनुरूप परिवर्त्तन करती हैं। इन्हें रासायनिक परिवर्त्तन कहते हैं। किन्तु इस सिद्धान्त द्वारा सभी औषधियोंकी क्रिया विधि का स्पष्टीकरण नहीं होता।

अनेक औषधियां यान्त्रिक तथा भौतिक रूप में (mechanically or physically) कार्य करती हैं। जैसे:— तलतनाव (surface-tention) और रसाकर्षण (osmosis) द्वारा। कुछ औषधियां

तान्त्रिक-वसा और लाइपायडस (nervous fats and lipoids) में विलीन होकर अपना प्रभाव या क्रिया करती हैं। दूसरे प्रकार की अनेक औषधियां अपनी अधिशोषण शक्ति (absorptivepower) द्वारा कार्य करती हैं। औषध द्रव्योंके अणुओं की आन्तरिक रचना और अयनिक विघटन शक्ति (power of ionic dissociation) का भी उनकी क्रियाशीलता पर प्रभाव पड़ता है।

साधारणतः औषधियों और लवणों (salts) के अयनों (ions) में ही उनका चिकित्सात्मक और रोग निवारक गुण अन्तर्निहित रहता है, सम्पूर्ण अणु या अणुहाणु (molecule) में नहीं।

—विविध-विशेष ज्ञातव्य —

(१) मात्रा (dose)— किसी औषधि की मात्रा वह राशि है, जो कोई वांछित औषध-प्रभाव (pharmacological action) उत्पन्न करने के लिये आवश्यक होती है। अधिकतम (maximum does) उस राशि को कहते हैं, जो बिना किसी कुपरिणाम के एक वयस्क या प्रौढ़ व्यक्ति को दी जा सकती है। न्यूनतममात्रा (minimum dose) वह अल्प राशि है, जो किसी स्वाभाविक दैहिक या स्वास्थ्यप्रभाव (physiolcgical action) उत्पन्न करने के लिये आवश्यक होती है।

ब्रिटिश फार्माकोपिया (बी. पी, B P,) में दी गयी सभी मात्रायें औसत या माध्य (average) मात्रायें होती हैं, जो रोगी की आवश्यकतानुसार चिकित्सक द्वारा घटाई या बढ़ाई जासकती हैं। औषध-मात्रा के अनुसार ही उसकी कार्य में भिन्नता होसकती है, जैसे आइपेकाकुआना चूर्ण (ipecacuanha powder) आधा ग्रेन से एक ग्रेन की मात्रा में कफ-नाशक (expectorants) या कफ निकालने वाली औषध तथा १५-२० ग्रेन की मात्रा में वमनकारी औषध (emetic) होता है।

(२) आयु (age)— औषध की मात्रा रोगी की आयु पर भी निर्भर करती है। वयस्कों के लिये निर्धारित मात्रा २०-६० वर्ष तक की उमरवालों के लिये होती है। बालकों और शिशुओं को इस मात्रा का एक प्रभाग या केवल एक अंश ही दिया जा सकता है। १२ वर्ष से

कम आयु वाले बच्चों के लिये एक साधारण व्यावहारिक सूत्र नीचे लिखे अनुसार है:—

जितनी आयु हो, उसमें (आयु +१२) से भाग दे दीजिये। भागफल में वयस्क मात्रा से गुणा कर दीजिये। बस, उस रोगी के लिये वही मात्रा होगी। उदाहरण— एक दो वर्ष के बालक के लिये वयस्कमात्रा के सातवें भाग की आवश्यकता होगी। यह सूत्र अधिकांश (किन्तु सभी नहीं) औषधियों के विषय में लागू होता है।

मात्रा निर्धारण की अन्य विधियां—

कौलिङ्ग-सूत्र (cowling's formula)—

वयस्य मात्राका चौबीसवां भाग = अगले जन्मदिवस पर आयु।

डिलिङ्गस-सूत्र (Dilling's formula)।

वयस्क मात्रा का बीसवा भाग (मेट्रिक प्रणाली में औषध-मात्रा निर्धारित करने के लिये)

१२-१६ साल तक वयस्क मात्रा का १/२-२/३, तथा

१६–२० साल तक २/३ से ४/५ अनुपातशः।

६० वर्ष के बाद फिर मात्रा में कमी हो जाती है।

(३) शरीरभार तथा आकार— मोटे-ताजे, हृष्ट-पुष्ट और अधिक शरीरभार-वाले रोगियों में साधारण कद के रोगियों की अपेक्षा कुछ अधिक मात्रा में औषधियां देने की आवश्यकता होती है।

(४) लिङ्ग (sex):— स्त्रियों के लिये पुरुषों की अपेक्षा कम मात्रा में औषधि की आवश्यकता होती है। गर्भावस्था में रेचक या गर्भाशय पर कार्य करनेवाली या प्रभावित करने वाली औषधियों का व्यवहार करने में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। बहुत सी औषधियां माता के दूध में क्षरित होती या निकलती हैं, जो नवजात शिशु को नुकसान पहुंचा सकती हैं; अतएव प्रसवोत्तर तथा दुग्धक्षरण काल या स्तन्यकाल (lactation)मे बच्चों और माताओं को औषधि देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये।

(५) प्रकृति, सहिष्णुता, असह्यता, व्युत्साहिक प्रवृत्ति आदि:—

कुछ व्यक्तियों में कुछ खास दवाओं के प्रति व्यक्तिगत व्युत्साहिक-

प्रयुक्त होती है, अतएव ऐसे व्यक्तियों को ये दवायें नहीं दी जातीं या अत्यधिक सावधानी के साथ सूक्ष्म मात्रा में दी जाती है। इसके प्रतिकूल कुछ लोगोंमें अपेक्षाकृत अधिक औषध-सहिष्णुता पायी जाती है, विशेषतः चिरकालीन प्रयोग द्वारा अभ्यस्त होजाने पर। जैसे बच्चों को बेलाडोना के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सहनशक्ति या वयस्कोंमें अफीम या कुचिला के अभ्यस्त हो जाने के बाद अधिक मात्रा में सेवन करने की शक्ति।

(६) औषध अवचारण विधि (mode of administration of drugs)— अनेक औषधियां मौखिक मार्ग से देने के लिए या तो अत्यधिक तिक्त या कुस्वादु (unpleasant taste) होती हैं या आमाशय में जाकर अक्रिय या नष्ट हो जाती हैं। ऐसी औषधियों को स्वान्त्रिक मार्ग से इञ्जैक्शन द्वारा देना होता है। इञ्जैक्शन द्वारा देने पर औषधियों की क्रिया निश्चित और शीघ्र होती है, अतएव इस विधि द्वारा देनेपर मौखिकमात्रा की अपेक्षा यह मात्रा बहुतकम होती है

(७) औषध अवचारण काल (time of administration of medicine) — औषधियां ऐसे समय से दीजानी चाहिये कि उनकी क्रिया नियत और स्वाभाविक समय पर होसके, जैसे नींद लाने वाली औषधियां या मन्द (मृदु) विरेचक औषधियां रात्रिकाल में, उत्तेजक तथा शक्तिवर्धक औषधें उषाकाल में (जिससमय जीवनीशक्ति अपेक्षाकृत क्षीण रहती है), कोडलिवर आयल भोजन के पश्चात (जिससे दुर्गन्ध के कारण आमाशय-उद्दीपन या वमनेच्छा नहीं उत्पन्न हो) आमाशय पर क्रिया के लिये भोजन के पूर्व (जैसे तीक्ष्ण या कषाय औषधियां)।

(८) अवशोषण तथा उत्सर्जन या निष्कर्षण दर— किसी औषधि की क्रिया और प्रभाव-काल क्रियान्वित अवयव के उत्तक-रस (tissue fluids) में उसके सान्द्रण पर निर्भर करता है, जो कि उत्सर्जन दर, उत्तकों द्वारा स्थिरीकरण (fixation by tissues) तथा निर्विषकरण (detoxication) आदि कारकों पर निर्भर करता है। साधारणतः सिराभ्यन्तरीय विधि से देने पर औषधि तत्काल हो

कार्य करती है। पेश्यभ्यन्तर इञ्जेक्शन या अधस्त्वगीय मार्ग से देने पर कुछ समय के बाद और मौखिकमार्ग से सबसे धीरे-धीरे कार्य करती है। जो औषधियां शीघ्र अवशोषित तथा उत्सर्जित हो जाती हैं, उनका सामान्य सान्द्रण बनाये रखने या स्थिर रखने के लिये उन्हें बार-बार देना पड़ता है।

(९) संचय तथा संचय क्रिया (accumulation and cummulative action)- साधारणतः शीघ्र या देर से अभिचारित (अवचारित) औषध शरीर से उत्सर्जित हो जाती है। किन्तु यदि अवधारण दर उत्सर्जन दर से अधिक हो तो उस औषध का शरीर में संचय होने लगता है, और यदि निर्विषीकरण पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है तो संचयजन्य कुप्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

यह निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न हो सकता है:—

१ द्रुत अवशोषण किन्तु विलम्बित उत्सर्जन- जैसे- सीस (lead) या पारद (mercury)

१ शरीर द्वारा गृहीत या स्थिरीकरण (fixation by tissues) के कारण विलम्बित उत्सर्जन।

रुग्णावस्था के कारण आकस्मिक विलम्बित उत्सर्जन।

४ आंतों में आकस्मिक परिवर्तन के कारण किसी अल्पविलेय (sparingly soluble) औषधियोंका वर्धित विलयन तथा अवशोषण

(१०) रोग (disease) औषधियों की स्वाभाविक क्रिया और फल स्वरूप उनकी मात्रा विधि रुग्णावस्था के अनुसार परिवर्तित हो जाती है; जैसे पित्तीय या वृक्कशूल (biliary or renal colic) या उदर्याकला प्रदाह (peritonitis) के रोगी बहुत अधिक मात्रा में अफीम या मार्फिन बर्दाश्त कर सकते हैं. या ज्वरहर औषधियां (antipyretics) जो प्रकृत या स्वस्थावस्था में शरीरोष्मा कम नहीं करती, ज्वरावस्था में उसे कम करके तापमान कम करती हैं।

(११) औषधि-अवधारणकाल— इसके विषय में पहले विचार किया जा चुका है।

(१२) पारस्परिक विरोध तथा सहकार्यता—
(antagonism and synergism)

अनेक सम गुण या सहकारी औषधियां एक दूसरे के प्रभाव को बढ़ाती हैं, जैसे ब्रोमाइड और क्लोरल हाइड्रेट (bromide and chloral hydrate), एड्रिनलीन और एफेड्रिन आदि (adrinalin and effedrin) इसके विपरीत विषम गुणवाली अनेक औषधियां परस्पर-विरोधी होती हैं, जैसे बार्बिटुरेट वर्ग (barbiturates) और स्ट्रीक्नन (strychnine), पाइलोकार्पिन और एट्रोपिन (pilocarpin and atropine)

* * * *

हमारे ग्रन्थों का प्रतिदिन आध-घण्टे स्वाध्याय करें

जब परिवार में कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तो बड़ी चिन्ता हो जाती है और सारे परिवार का आनन्द गायब हो जाता है। उस समय शहरवाले डॉक्टरों के पास और देहातवाले अन्य चिकित्सकों के पास दूर-दूर तक जाकर इलाज कराते हैं और समयके साथ अपार धन-व्यय करते हैं।

— हमारा आग्रह है कि वे —

प्रतिदिन आधा घण्टे हमारे ग्रन्थों का स्वाध्याय करें। हमारे नीचे लिखे ग्रन्थों को पढ़ने से कहीं कहीं तो उपान्यास जैसा आनन्द आता है और साथ ही साथ आयुर्वेद के गूढ़तम अनुभव अनायास प्राप्त हो जाते हैं। जिन्होंने भी हमारे ये ग्रन्थ पढ़े मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। प्राप्त पत्रों का सार-भाग इस प्रकार है।

(१) आपके तत्काल फलप्रद प्रयोग के पांचों भाग बड़े ही प्रभावक हैं। हमने दस-रुपये मासिक खर्च करते हुये हजारों रोगियों का इलाज धड़क्के के साथ करना शुरू कर दिया है। आपको धन्यवाद।

(२) नवीन चिकित्सानुभवांक में तो आपने आधुनिक एलोपैथिक अनुभूत चिकित्सा विधि को बड़ी सरलता से समझाया है। हम इससे बड़ा लाभ उठा रहे हैं। हमारी चिकित्सा चमक उठी है।

(३) कुकरकास विज्ञान और सूजाक रोग विज्ञान बाल-रोगों की चिकित्सा में उनके लिये जीवनप्रद प्रामाणिक हुए हैं। आपने सैकड़ों प्रयोग दिये हैं, जो सभी अनुभूत प्रतीत होते हैं, आदि-आदि।

वैद्य पं. चन्द्रशेखर जैन शास्त्री, साखाभवन, पुरानीचरहाई, जबलपुर

❀ पांचवां अध्याय ❀

— क्रिया-वैषम्य या गुण-विरोध —

(incompatibility)

क्रिया-विषमता या गुण-विरोध चार प्रकार का होता है—
(१) भौतिक (physical) [२] रासायनिक (chemical)
(३) भैषजकीय (pharmaco logical) तथा
(४) स्वाभाविक (physiological)

— भौतिक गुण-विषमता —

यह ऐसे द्रव्यों के मिश्रणसे उत्पन्न होती है, जिनका विलयन स्वच्छ या पारदर्शक नहीं होता या जिसके विभिन्न घटक जलविलेय (water soluble) नहीं होते । कुछ स्फटिक पदार्थ या सान्द्र-द्रव्य आपस में मिलाने से तेल जैसा तरल उत्पन्न करते हैं ।

निम्नलिखित द्रव्य जल विलेय नहीं होते— तेल, अविलेय चूर्ण या पाउडर, कुछ विशेष प्रकार के स्पिरिट और रेसिन्स (spirit and resins); कुछ सत्व (extracts) आदि । यदि इन्हें जल में मिलाना ही अभीष्ट हो तो अनेक विशेष विधियों द्वारा ऐसा करना पड़ता है, जैसे ट्रागाकैन्थ. गोंद, श्वेतसार (starch) आदि द्वारा पायस (emulsion) या प्रलिलम्बन निर्माण ।

— रासायनिक क्रिया वैषम्य —

(chemical incompatibility)

साधारणतः यह ऐसे दो विलेय लवणों (soluble salts) की अन्तः क्रिया द्वारा उत्पन्न होता है, जो आपस में मिलकर एक तीसरा लवण बनाते हैं । इसके दो मुख्य प्रभेद होते हैं:— (१) समजात (homogenous (2) विषमभेद (heterogenous) ।

(१) समजात विषमता (homogenous incompatibility) नग्न दृष्टि परीक्षा (nacked eye examination) द्वारा इस मिश्रण

के स्वरूपमें कोई परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। यद्यपि उसका रङ्ग बदल जा सकता है । अम्ल तथा क्षार (acids and alkalies) आपसमें विषमगुण होतेहैं। जैसे— लेक्टिकएसिड और चूनाका पानी या सुधाजल (lacticacid and lime water)

(२) विषमभेद या विजातीय विषमता (heterogenous incompatibility)— इससे मिश्रणके रूपमें प्रत्यक्ष परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे गैस (gas) या निक्षेप, अवक्षेप या तलछट की उत्पत्ति। इसके दो मुख्य प्रभेद हैं— (१) वांछित (intentional) या ऐच्छिक जैसे सिडलिज पाउडर (sedlitz powder) तथा अन्य प्रबुद्बुदक या एफर्वेसेन्ट मिश्रण (effervescent mixtures) वानस्पतिक काषाय या संकोचक (vegetable astringent) और लौह-लवण (iron salts) आदि।

परिहार्य (avoidable)

इस प्रकार की विषमता मिश्रण के विभिन्न द्रव्यों की पारस्परिक अन्तः क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है, जिससे हानिकारक या सांघातिक समास निर्मित हो जाते हैं। यद्यपि इसप्रकार के विषमक्रिया-समासों या तत्वों की सम्पूर्ण तालिका स्मरण रखना कठिन है, फिर भी निम्नलिखित तथ्य स्मरणीय और ध्यान देने योग्य हैं:—

[१] किसी औषध या द्रव्य को उससे परीक्षक जाचवाले या क्रिया नाशक द्रव्यों के साथ (tests or antidotes) कभी औषधि के रूप में मिश्रित नहीं करना चाहिये।

[२] ग्लूकोसाइडों (glucosides) को मुक्त अम्लों के साथ नहीं मिश्रित करना चाहिये, क्योंकि इससे वे विघटित (decomposed) हो जाते हैं।

[३] एल्कलवायड्स या एल्कलवायडल साल्ट्स (alkaloids and alkaloidal salts) को क्षार, क्षारीयलवण, टैनिक एसिड, आयोडाइड्स, या ब्रोमाइड्स (iodides or bromides) आदि के साथ मिश्रित नहीं करना चाहिये; क्योंकि इनसे वे अवक्षेपित (precippitated) हो जाते हैं।

[४] अधिक आक्सिजनयुत तत्व जैसे क्लोरेट्स, पिक्रेट्स, बाइ-

क्लोरेट्स और पर्मांगनेट्स, (chlorates, picrates, bichromates and permanganates) जैसे तत्व, चारकोल, गन्धक, आयोडिन, ग्लिसरीन, तारपीन तथा कार्बनिक तत्वों (charcoal, sulphur, iodine, glycerine, tarpene and organic matters) जैसे शीघ्र या उज्ज्वलनशील तत्वों के साथ नहीं मिलाना चाहिए, क्योंकि इससे विस्फोटक उत्पाद (product) सृष्टि या विस्फोटका भय रहता है

(५) कुछ विशेष द्रव्योंके विलयनके मिश्रण द्वारा विषाक्त सगास (poisonous products) बन जाते हैं। जैसे— लिकर फेरी आयोडाइड और पोटेशियम क्लोरेट के मिश्रण द्वारा आयडिन (iodine) उन्मुक्त होता है, जो प्रदाहक होने के कारण आमाशय शोथ या प्रदाह उत्पन्न कर सकता है। डाइल्युट या तनु हाइड्रोक्लोरिक एसिड (dilute hydrochloric acid) कार्बोनेट, सबनाइट्रेट या सबक्लोराइड (carbonate, subnitrate or subchloride) के साथ धातुओं का साइनाइड उत्पन्न करता है, जो मूल-घटकोंसे बहुत अधिक विषाक्त होता है।

क्लोरलहाइड्रेट और स्पिरिट एमोन एरोमेट (Chloralhydrate spirit amon aromat) के मिश्रण से क्लोरोफार्म बन जाता है।

(७) बिस्मथ सबनाइट्रेट और सोडियम बाइ कार्बोनेट (Bismuth subnitrate + sodium bi carbonate) के मिश्रण से कार्बन-डाइक्साइड गैस उत्पन्न होता है।

(८) तारपीन के तेल और गन्धकाम्ल (turpentine oil & sulphuric acid) के मिश्रणसे तत्काल विस्फोट हो जाता है।

भैषजिक विषमता

(pharmaceutical incompatibility)

दो वैषम्य या विपरीत क्रियावाले द्रव्योंके संसर्ग से ऐसी विषमता उत्पन्न होती हैं। जैसे— अफीम और बेलाडोना वर्ग (opium and Belladona group) के औषध या पाइलोकार्पिन और एट्रोपिन (Pilocarpin and atropine) आदि।

* छठा अध्याय *

— मान (माप) विज्ञान —
(Metrology)

माप-विधि (Methods of drug measures)

दशमलव प्रणाली— यह प्रणाली सर्वाधिक प्रचलित है और भारत वर्ष में भी सरकार द्वारा अपना ली गई है।

परिमाण या भारका माप (measure of mass) इसमें निम्नलिखित संक्षिप्त रूप व्यवहृत होते हैं:—

1 Gramme or Gram = Gm or G

1 Milligramme = mg or 1/1000 of a gramme

1 Microgramme = v or ug = 1/100000 „ „

इस माप का इकाई 'ग्राम (Gramme) होता है, जो एक मिलिलिटर शुद्धजल के भार के बराबर होता है।

१ किलोग्राम(Kilogramme)=२.२ पौंड या लगभग १सेरके बराबर

१ किलोग्राम = १००० ग्राम

१ ग्राम = १००० मिलिग्राम

१ मिलिग्राम = १००० माइक्रोग्राम

(२) परिमा या आयतन का माप (Measure of capacity or volume १ लिटर (४ डिग्री सेन्टिग्रेड ताप पर) एक किलोग्राम। परिश्रुत जल की परिमा [ण] के बराबर होता है।

१ लिटर (litre) = १००० मिलिलिटर।

नोट— एक क्यूबिक (घन) सी. सी. प्राय एक मिलि लिटर के बराबर होता है।

(३) लम्बाई की माप (Measures of length)

१ मीटर (metre or M) = १०० सेन्टिमीटर

१ सेन्टिमीटर (centimetre or Cm) = १० मिलिमीटर

१ मिलिमीटर (millimetre) = १००० माइक्रोन
१ माइक्रोन (micron or u) = १००० मिलिमाइक्रोन

इम्पीरियल मान (Imperial measure)

भार या परिमाण की माप (measure of mass)

एपोथिकैरिज माप (Apothecary s weights)

नाम	चिह्न	समतुल्यता
१ औंस	℥	४८० ग्रेन या ८ ड्राम
१ ड्राम	ʒ	६० ग्रेन या ३ स्क्रूपल
१ स्क्रूपल (scruple)	℈	२० ग्रेन

एवायर्डुपोइस (Avoirdupois) मान

नाम	चिह्न	समतुल्यता
१ पौंड	lb	१६ औंस या ७००० ग्रेन
१ औंस	oz	४३७.५ ग्रेन

आयतन या धारिता की माप (measure of capacity)

१ पाइन्ट (pint)	O	२० तरल औंस
१ तरल औंस (ounce)	℥	८ तरल ड्राम
१ तरल ड्राम (drachm)	ʒ	६० मिनिम

एक मिनिम (minim or m) १६.७ डिग्री तापमान पर ०·९४१ ग्रेन शुद्ध जल के परिमाण के बराबर होता है।

घरेलू माप या गृहमान (Domestic measures)

१ (साधारण) बून्द = लगभग एक मिनिम या १/२० सी. सी.
१ चाय की चम्मचभर (one tea spoonful) = १ तरलड्राम या ५ मिलिलिटर।
१ डेजर्टस्पूनफुल (Dessert spoonful) = २ तरल ड्राम या ८ मिलिलिटर
१ टेबलस्पूनफुल (table spoonful) = ४ तरल ड्राम या १/२ औंस या १५ मिलिलिटर
१ कप (tea cup full) = ६ तरल औंस
१ गिलास (tumblerful) = ११ तरल औंस

परिवर्तन या परिवृति (Conversion) तालिका

[१] पिण्ड या भार (mass)

१ किलोग्राम = २.२०४६ पौंड या १५,४३२ ग्रेन

१ ग्राम = १५ ४३ ग्रेन

१ (एव्यूरड्यूपोज) पौंड = ४५३. ५६ ग्राम

१ औंस = २८.३५ ग्राम

१ ग्रेन = ०.०६५ ग्राम

[२] परिमा या आयतन (volume or capacity)

१ लिटर = १.७६ पाइन्ट या लगभग ३५ तरल औंस

१ मिलिलिटर = लगभग १७ मिनिम (minims)

१ पाइन्ट = ५६८.३ मिलिलिटर

१ तरल औंस = २८ ० मिलिलिटर

१ तरल ड्राम = ३ ५ मिलिलिटर

[३] लम्बाई (length)

१ मिटर = लगभग ३९ इञ्च

१ सेन्टिमिटर = लगभग ०.३९ इञ्च

१ मिलिमिटर = „ ०.०४ इञ्च

१ इञ्च = २५.४ मिलिमीटर

परिवर्त्तन—तालिका

साधारणतः एक मानसे दूसरे मानमें परिवर्तन करने के लिये—

ग्राम को ग्रेन में परिवर्तन करने के लिये १५.४३ से गुणा कीजिये।

ग्रेन से ग्राम में „ „ „ ०.०६४८ „ „

किलोग्राम को पौंड „ „ „ २.२० „ „

मिटर को इञ्च „ „ „ ३९.३७ „ „

इञ्च को मीटर „ „ „ ०.०२५४ „ „

पाइन्ट को लिटर „ „ „ ०.५६८ „ „

तरल औंस को घन सेन्टिमिटर „ २८.४१ „ „

दूसरा खण्ड

❀ प्रथम अध्याय ❀

आन्त्र–आमाशय पथ पर कार्य करने वाली औषधियां—
(drugs acting on gastro-intestinal tract)

किये गए भोजन को ग्रहण करने के लिये आमाशय (stomach) एक आशय या संचयागारके रूपसें कार्य करता है और अंशतः यान्त्रिक रूप तथा पाचन (digestion) द्वारा उसे अर्धतरल या तरल अवस्था में परिवर्तित कर देता है। आमाशय में आहार प्रकृत अवस्थामें प्रायः ३—४ घण्टा रहता है, और अर्धपाचित तथा तरलावस्था में हो जाने के बाद संकोचन–तरङ्गगति (peristaltic movement) द्वारा पाइलोरिक द्वार से होकर आमाशय से आंतो में धीरे-धीरे पहुंच जाता है। आमाशय में विभिन्न पाचक रसों की आहार पर क्रिया होती है। आमाशयिक–रस (gastric juice) जिसमें पेप्सिनोजेन (pepsinogen) रेनिन (renin) गैस्ट्रिक-लाइपेस (gastric lipase) म्यूसिन (mucin) तथा अकार्बनिक लवण (inorganic) तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड (hydrochloric acid) वर्तमान रहता है, निम्नलिखित कार्य करता है:—

(१) पेप्टिक परिपाचन (peptic digestion)—
(pepsinogen & hydrochloric acid pepsin — यह मुख्यतः पेप्सिनोजेन से उत्पन्न पेप्सिन और हाइड्रोक्लोरिक एसिड द्वारा होता है। जो आहार के प्रोटीन का क्रमिक पाचन या विघटन करके अन्तिम उत्पाद के रूप में पेप्टोन्स (peptones) तथा पॉलिपेप्टाइड्स (polypeptides), कोलाजेन (collagen) को जेल्टोज और जेल्पेप्टोन्स (Jeltose and Jelpeptones), न्यूक्लियोप्रोटीनको प्रोटीन तथा न्यूक्लिन (protein and nuclein) में; और बादमें इस प्रोटीन को प्रोटिओमेस और पेप्टोन में; और (mucin) को प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट और इस प्रोटीन को पेप्टोनमें परिवर्तित कर देता है। दूध-प्रोटीन के केसीनोजेन (caseinogen) को रेनिन नामक एन्जाइम (एन्जाइम) केसीन (casein) में परिणत कर देता है। जो कैल्शियम

लवण के साथ मिलकर दूध को दही के रूप में परिवर्तित कर देता है। (दुग्धातञ्चन clotting of milk) जो आमाशय रस द्वारा परिपाचित होकर पेप्टोन बनता है।

(२) निःसंक्रामक या रोगाणुघ्न क्रिया (antiseptic action) आहार और मुंह के क्षार के साथ आमाशय में आने वाले अधिकांश रोगाणु हाइड्रोक्लोरिक एसिड युत आमाशयिक रस द्वारा मारे जाते हैं

(३) हाइड्रोक्लोरिक एसिड द्वारा चीनी का आंशिक वियोजन (hydrolysis) होकर ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज बनता है।

(४) आमाशय के आन्तरिक घटक और आहार के बाह्य-घटक (Extrinsic factor) के मिश्रण से रक्तोत्पादक घटक (Haemo-portic factor) बनता है। जो समुचित रक्तोत्पादन क्रिया के लिये आवश्यक होता है।

(५) आहार के लोहा-अंश के अवशोषण में सहायक होता है।

— आमाशय और आंतों के कार्य —

आमाशय के कार्य:— (१) भोजन के लिये आमाशय कुछ समय तक संचयागारके रूपमें कार्य करताहै, जहां इसका पचन पाचन होताहै

(२) पेप्टिक पाचन— पेप्सिनोजेन तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड द्वारा आहार के प्रोटीन का पाचन तथा पेप्टोन्स में परिवर्तन।

(३) आमाशय के आन्तरिक तथा आहार के बाह्य-घटक के मिलने से रक्तोत्पादक (haemoportin) घटक बनता है (रक्तोत्पादन क्रिया)। (४) आमाशयिक रस तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड द्वारा रोगाणुघ्न क्रिया। (५) आहार से लोहा का अवशोषण।

आंतों के कार्य:— आंतों के मुख्य कार्य पाचन, अवशोषण तथा मलोत्सर्जन हैं।

क्षुद्रान्त्र या छोटी अंतड़ियों के कार्य:— क्षुद्रान्त्रों से निम्नलिखित विकार (enzymes) स्रवित होते हैं, जो आहार के पाचन में भाग लेते हैं:—

(१) एन्टेरोकाइनेस (enterokinase)— जो ट्रिप्सिनोजेन नामक विकर को सक्रिय बनाता है। एरेप्सिन (Erepsin)— जो

पेप्सिन और ट्रिप्सिन के कार्य (प्रोटीन पाचन) में सहायक होता है।

माल्टेस, लैक्टेस तथा इन्वर्टेस (maltase, lactase and invertase)— जो माल्टोस, लैक्टोस और चीनी को ग्लूकोज में परिवर्तित करते हैं। न्यूक्लियेस (nuclease) जो न्यूक्लिक एसिड समास पर कार्य करता है और उसे पाइरिमिडिन-न्यूक्लियोटाइड्स (pyrimidin nucleotides) और समवर्ती प्यूरिन (purine) समास में परिवर्तित करता है। इसके अतिरिक्त इरेप्सिन, प्रोटिनेस, टायरसिनेस आदि विकार तदनुरूप कार्य करते हैं।

पक्वाशय (Duodenum) से सिक्रेटिन (secretin) और अनेक विकरोयुत सक्कस-एन्टेरिकस (succus entericus) या आन्त्ररस का स्रवण होता है, जिसमें इरेप्सिन और एन्टेरोकाईनेस होता है। जो क्रमशः पोलिपेप्टाइड्स के एमाइनो एसिड और अग्न्याशयिक रस (pancreatic juice) के ट्रिप्सिनोजेन के ट्रिप्सिन में परिवर्तन होने के लिये आवश्यक होता है। पित्ताशय तथा अग्न्याशय से निकलने के बाद पित्त तथा अग्न्याशयिक रस भी पक्वाशय में स्रवित होते हैं, जिनके कार्य निम्नलिखित हैं —

अग्न्याशयिक रस (Pancreatic juice)—

एन्टेरोकाइनेस द्वारा उत्प्रेरित होने पर ट्रिप्सनोजेन से ट्रिप्सिन बनता है; जो प्रोटीन का विघटन कर एमाइनो एसिड बनाता है।

एमाइलोप्सिन (amilopsin) या एमाइलेस (amylase) मन्ड या श्वेतसारीय पदार्थों (starch) पर कार्य करता है, इन्हें एक्रो डेक्सट्रीन (achroo dextrin) और माल्टोस (maltose) में परिणत करता है।

वसा के पायसिकरण और साबुनीकरण (emulsification and saponification) पश्चात् लाइपेस (lipase) नामक विकार उन्हें ग्लिसरीन और फैटीएसिड में परिणत कर देता है।

पित्त के कार्य (functions of bile)

(१) पित्त के पित्तलवण पेन्क्रियास या अग्न्याशय के सभी विकारों (लाइपेस, ट्रिप्सिन, एमाइलेस) के कार्य में सहायक होते हैं।

केसीन में परिणत कर देता है, जो कैल्शियम के साथ मिलकर उसे दही के रूप में जमा देता है। इस प्रक्रिया को दुग्धातञ्चन (clotting of milk) कहते हैं।

इस रस का लाइपेज नामक एक दूसरा विकर आहार के स्नेहांश पर पायसीकरण के बाद कार्य करता है। कार्बोहाइड्रेट वर्ग के आहार पर आमाशयिक रसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि हाइड्रोक्लोरिक एसिड द्वारा कुछ चीनी ग्लूकोस में परिणत हो सकती है।

क्षुद्रान्त्रों (छोटी आंतों) में पाचन क्रिया—

आहार के पक्वाशय (duodenum) में प्रवेश करने के दो-चार मिनिट के अन्दर ही पक्वाशयिक रस का स्राव प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ में यह रस श्लेष्मा, क्षारीय तरल, तथा सिक्रेटिन (secretin) नामक विकरयुक्त होता है। किन्तु बाद में अनेक प्रभावशाली विकरों ने युक्त आन्त्र रस (succus entericus) का क्षरण होता है। यह रस क्षुद्रान्त्र के और हिस्सों से भी क्षरित होता है।

आन्त्ररस में विद्यमान एन्टेरोकाइनेस नामक विकर अग्न्याशयिक रस के ट्रिप्सिनोजेन नामक विकर को सक्रिय कर देता है, जिससे ट्रिप्सिन नामक विकर उत्पन्न होता है, जो प्रोटीन तथा इसके मध्यवर्ती समासों का उत्पादों का पाचन करता है।

अग्न्याशयिक पचन-पाचन समगुण या किंचित् क्षारीय माध्यम (neutral or slightly alkaline medium pH 6 5=7) में अच्छी तरह से होता है। इस रस में ट्रिप्सिनोजेन के अतिरिक्त एमाइलेस तथा लाइपेस नामक विकर भी रहते हैं, जो कार्बोहाइड्रेट तथा स्नेह जातीय पदार्थों पर कार्य करते हैं। आन्त्र रसमें एरेप्सिन, सुक्रोस, माल्टेस, लैक्टेस, न्यूक्लियेस आदि विकर भी रहते हैं, पक्वाशय में पित्त प्रणाली द्वारा आकर पित्त रस भी मिलता है। पित्तरस में (१) पित्त लवण (२) कोलेस्टेरोल, न्यूक्लिन, लेसिथिन आदि द्रव्य तथा (३) पित्तरञ्जक द्रव्य होता है। स्नेहपाचन में अत्यधिक प्रभावशाली होनेके अतिरिक्त पित्तलवण अन्य विकरोंके कार्यमें भी सहायक होताहै

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्षुद्रान्त्रों में नानाप्रकार के विकर तथा स्राव परस्पर मिश्रित होते हैं। अग्न्याशयिक-आन्त्रीय पचन-पाचन

क्षुद्रान्त्रों में पूर्ण हो जाते हैं। जटिल कार्बोहाइड्रेट, डाइ-, तथा पोली-शकराइड्स (Di- and poly-saccharides) मोनोसैकराइड्स में, प्रोटीन एमाइनो एसिड्स में तथा स्नैहिक-पदार्थ स्नेहाम्ल तथा ग्लिस-रोल में परिणत हो जाते हैं। स्नेहाम्ल क्षारीय तत्वों के साथ मिलकर, साबुनीभवन (saponified) हो जाते हैं या फिर लेसिथिन या कोले-स्टेरोल के साथ मिलकर एस्टर्स (esters) बनाते हैं। न्यूक्लियो-प्रोटिन्स विघटित होकर प्रोटीन का न्यूक्लिक एसिड में खंडित हो जाता है। प्रोटीन का साधारण शरीर में विघटन हो जाता है। न्यूक्लिक एसिड न्यूक्लिओटाइड्स, न्यूक्लियोसाइड्स तथा फास्फोरिक एसिड में विघटित हो जाता है। न्यूक्लियोटाइड्स का फिर विघटन होता है, जिससे उसका कार्बोहाइड्रेट मूल (radical) विभक्त हो जाता है।

भोजन का अवशोषण—

पाचन क्रिया द्वारा अवशोषण के लायक हो जाने के बाद ही भोजन का अवशोषण होता है। मुख या आमाशय से यह क्रिया प्रायः नहीं के बराबर होती है। यद्यपि आल्कोहल, ग्लूकोस माल्टोस, पेप्टोन जैसे सरल द्रव्यों का आमाशय से कुछ अंश तक अवशोषण हो सकता है। मुख्य अवशोषण-क्रिया क्षुद्रान्त्रों में होती है, जिसकी सूक्ष्म संरचना इसके लिये विशेष उपयुक्त होती है।

अन्नांकुरों (villi) की वाहिनियों द्वारा सुगमता और सरलता पूर्वक अवशोषित होकर जल, लवण, ग्लूकोस तथा एमाइनोएसिड आदि प्रतिहारिणी सिरा (portal vein) और यकृत से होकर रुधिर-वाहक तन्त्र (रक्त परिवहन संस्थान) में पहुंचते हैं। साबुनीकृत वसा पायसिनियों या दुग्धाम्ब-वाहिनियों (lacteals) द्वारा अवशोषित होकर लसीकावाहिनियों और वक्षलसीकावाहिनी (thoracic duct) से होकर रुधिर में पहुंचता है। सुक्रोस, लैक्टोस, माल्टोस, ग्लूकोस में परिवर्तित होकर अवशोषित होते हैं।

साधारणतः कलिल (colloids) की अपेक्षा केलासाभ (crysta-lloids) अधिक सुगमता पूर्वक अवशोषित होते हैं। बृहदन्त्र में बड़े परिमाण में जल का अवशोषण होता है। गुदनलिका (rectum)

तथा बृहदन्त्र से जल के अतिरिक्त लवण, ग्लूकोस, आलकोहल (alcohol), ईथर, क्लोरोफार्म, जैतून का तेल आदि भी अवशोषित होते हैं।

मल (faeces)— आहारका अपाचित, अनवशोषित द्रव्य कायिक चयापचय (metabolism) के उत्पाद तथा जीवाणु मल के रूप में उत्सर्जित हो जाते हैं।

—आमाशय पर काम करनेवाली औषधियाँ—
(drugs acting on stomach)

तिक्तवर्ग की या बुभुक्षाकर (क्षुधावर्धक) औषधियाँ—
(bitters or appetizers medicines)

ये औषधियाँ कड़वी होती हैं और भूख बढ़ाने तथा पाचन क्रियामें सहायता करनेके लिये व्यवहृत होती हैं। ये स्वाद-तन्त्रिकाओं (gustatory nervs) को उत्तेजित कर लार (saliva) और आमाशयिक रस क्षरण में वृद्धि करती हैं। ये इन वर्गों में विभाजित की जाती हैं।

(१) साधारण तिक्त औषधियाँ— जैसे चिरायता, जेनशियन, क्वासिया, कलम्बा आदि। (२) सुगन्धित तिक्त औषधियाँ— इनमें तिक्त तत्वके अतिरिक्त कोई सुगन्धित-तत्व या सुवासी-तत्व भी विद्यमान रहता है, जो औषधियों को सुस्वादु बनाने के काम आता है। उदाहरणार्थ नारङ्गी का छिलका।

जेनशियन (Gentian)—

यह जेनशियन ल्यूटिया (gentian lutea) नामक पौधा का सुखाया हुआ मूल तथा शिफाकन्द (rhizome) है। इसके निम्नलिखित कल्प साधारणतः प्रयुक्त होते हैं:—

कल्प	मात्रा
(१) जेनशियन चूर्ण या पाउडर	०.६–२ ग्राम
(२) इन्फ्यूजन जेनशियन को. कन्सेन्ट्रेटम (Infusion Gentian Co conc)	२–४ मिलिलिटर्स
(३) इन्फ्यूजन जेन्शियन कम्पोजिटम्	१५–३० ,,
(४) टिन्चर जेन्शियन कम्पोजिटम	२४ ,,

आरेन्शाइ कौर्टेक्स रिसेन्स—

(Aurentii Cortex Recens ताज़ा नारङ्गी का छिलका)

कल्प	मात्रा
(१) टिन्चर औरेन्शाई	१-४ मिलिलिटर्स
(२) सिरप औरेन्शाई	४-८ ,,

औरेनशाइ कौर्टेक्स सिक्केटस (aurentii cortex siccatus) पक्का हुआ नारङ्गी का सुखाया हुआ छिलका।

कल्प	मात्रा
(१) इन्फ्यूजम आरेनशाइ कन्सेन्ट्रेटम (infusum aurentii conc.)	१-४ मिलिलिटर्स या १०-६० मिनिम
(२) इन्फ्यूज़म् आरेन्शाई	१५-३० मिलिलिटर्स

वायु नाशक या वायुहर औषधियां (carminatives)

ये औषधियां वायुप्रवर्तक होती हैं और आमाशय-आन्त्रपथसे संचित वायु निकलती हैं और विस्फार, उदराध्मान, डकार आदिको दूर करती हैं। सम्भवत. निम्नलिखित प्रकार से ये कार्य करती हैं:—

(१) संकोचन तरङ्गगति (peristaltic movement)को नियन्त्रित करके। (२) तन्त्रिकाओं (nerves) और पेशियों को उत्तेजित करके। (३) आमाशय के प्रवेश और निर्गम द्वार को फैलाकर।

इस वर्ग की औषधियां:—

(१) वाष्पशील या उड़नशील तैल (voletile oils)

(२) सुगन्धित-तिक्त औषधियां (aromatic bitters)

(३) पिपरमिन्ट या मेन्थोल [Menthol], कपूर, आकोहल [मद्य] आदि।

अम्ल तथा अम्लनाशक औषधियां—

(acids and antacids):— कुछ विशेष रोगों या अवस्थाओं में आमाशयिक रसमें हाइड्रोक्लोरिक एसिड का क्षरण न्यून या अधिक हो जाता है। ऐसे रोगों में इन औषधियों का व्यवहार होता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड की कमी से आमाशयिक रस का रोगाणु घातक गुण कम हो जाता है और अतिसार जीर्ण आमाशयशोथ आदि रोग उत्पन्न

हो सकती है। इसी कमी को साधारण। तनुकृत हाइड्रोक्लोरिक एसिड ५-१५ मिनिम (बून्द) की मात्रा में देकर पूरा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त चिकित्सा निमित्त तनु [dilute] फास्फोरिक एसिड, हाइड्रोओनिक एसिड, एसेटिक एसिड आदि का भी प्रयोग होता है।

अम्लनाशक पदार्थ (antacids)—

आमाशयिक व्रण या घाव (peptic ulcer) आदि होने पर आमाशय की अम्लता अत्यधिक बढ़ जाती है, जिसका निराकरण इन औषधियों तथा विशेष अम्लनाशक आहारों द्वारा किया जाता है। इसके लिये दूध बहुत उत्तम अम्लनाशक द्रव्य है। औषधियों में एल्युमिनियम हाइड्रोक्साइड (aluminium hydroxide) मैग्नेशियम ट्राइसिलिकेट (magnesium trisilicate) बिस्मथ, कैल्शियम मैग्नेशियम और सोडियम कार्बोनेट का व्यवहार होता है। सोडियम बाइकार्बोनेट का एक दुर्गुण यह होता है कि इससे कार्बनडायक्साइड गैस उत्पन्न होती है; जो अम्ल-क्षरण को बढ़ाता है।

वमनकारी तथा वमननाशक औषधियां—
(emetics and antiemetic)

वमनकारी औषधियां वमन कराने के लिये साधारणतः निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रयुक्त होती हैं:—

[१] आमाशय से विष या अपाचित द्रव्यों को निकालने के लिये [२] गला और भोजननली (oesophagus) से बाह्य पदार्थों [foreign bodies] को निकालने के लिये। [३] सूक्ष्म मात्रा में श्वासनलिका स्राव [bronchial secretion] निकालने के लिये।

वमनकारी औषधियों को साधारणतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:—

(१) स्थानीय या स्थानिक— जिनका कार्यस्थल आमाशय होता है और जिन्हें परावर्तक (reflex) या आमाशयिक वमनौषध कहते हैं। जैसे- फिटकरी, जिंकसल्फेट, आइपेकाकुआना (ipecacuanha) तूतिया (copper sulphate) मस्टर्ड या सरसों (mustard), नमक और गर्म जल। ये औषधियां दसवीं कपालिक तन्त्रिका (वेगस-

नाड़ी)के आमाशयिक नाड्यान्तों (vagus nerve endings in the stomach) को उत्तेजित कर प्रबल आमाशय संकोच उत्पन्न करती हैं, जिसके फलस्वरूप वमन होजाता है।

(२) केन्द्रीय वमनकारी औषधियां (central emetics)— इस श्रेणीमें वे औषधियां आती हैं, जो शोषणके पश्चात सुषुम्ना-शीर्षक स्थित वमन-केन्द्र पर कार्य करती हैं— जैसे एपोमोर्फिन (apomorphine)। अधिक सेवन के बाद डिजिटेलिस आदि से भी इसी केन्द्र के उत्तेजन द्वारा वमन होता है।

वमन नाशक औषधियां (antiemetics) :

ये औषधियां वमन और वमनेच्छा शान्त करती हैं। ये दो वर्गोंमें विभाजित की जाती हैं.— (१) स्थानीय, यानी जो आमाशय पर स्थानिक रूप में कार्य करती हैं। (२) केन्द्रीय, यानी जो वमन-केन्द्र (vomitting center) पर कार्य करके उसे अवसादित (depressed) करती हैं।

कैलोमेल, एड्रीनलीन, आलकोहल, टिंक्चर आइडिन, टिंक्चर इपेकाकुआना, सेरिअमआक्जलेट, क्लोरेटोन, एवोमिन, डाइल्यूटहाइड्रोसायनिक एसिड आदि (calomel, adrenalin, alcohol, tincture iodine, tincture ipecacuanha, ceriuoxalate, chloretone, avomin, dilute hydrocynicacid) बिस्मथ और केओलीन आमाशयिक श्लैष्मिककला पर एक पतला लेप (coating) चढ़ाकर यांत्रिक रूप में वमननाशक क्रिया करते हैं। पायरीडोक्सिन हाइड्रोक्लोराइड गर्भकालीन वमन, सामुद्रिक उत्क्लेश आदि की चिकित्सा के लिये व्यवहृत होते हैं।

आंतों पर कार्य करने वाली औषधियां—

विरेचक औषधियां (purgatives)— ये औषधियां आंतों से मलोत्सर्जन क्रिया में सहायता पहुंचाती हैं। ऐसी औषधियों में निम्न-लिखित गुण होने चाहिये— (१) आमाशय में प्रदाह नहीं उत्पन्न करें (२) केवल आंतों पर ही कार्य करें। (३) अवशोषित नहीं हों और मल के साथ ही उत्सर्जित हो जांय।

ये औषधियां निम्नलिखित प्रकार से कार्य करती हैं —

(१) शोषित नहीं हो सकने वाले (शोषण-अक्षम) आहार-द्रव्यों के परिमाण में वृद्धि करके (ये यान्त्रिक रूप से आन्त्र संकोचगति में वृद्धि करती हैं) जैसे सेल्यूलोस, अगर-अगर (cellulose, Agar-agar) ईसबगोल, कुछ रेशेदार फल, चोकरयुक्त आटा।

(२) स्नेहक (lubricants)— यानी आन्त्र-नली तथा मल को स्निग्ध करके- जैसे लिक्वीड पाराफिन।

(३) जल-अवशोषण अवरुद्ध करके और शारीरिक जल को आंतों में खींच करके जैसे लवण विरेचक (saline purgatives) मैग्नेशियम या सोडियम सल्फेट।

(४) उत्तेजक या उद्दीपक (irritants)— आंतों को उत्तेजित कर और परिणाम स्वरूप प्रति संकोचित रूपसे आन्त्रीय संकोचन-तरङ्ग की गति में वृद्धि करके। अधिकतर रेचक औषधियां इसी श्रेणी में आती हैं— जैसे रेंडी का तेल, गन्धक, पारद (mercury) जलाप, क्रोटन का तेल, कोलोसिन्थ, फेनल्फथैलिन और एन्थ्रासिन वर्ग के विरेचक जैसे रुबार्ब, सेना, एलोज, कैस्करा आदि। (castoroil, sulphur, mercury, Jalap, croton oil, colocynth, phenolphthalin and Anthracene purgatives like Rhubarb, Sennas, Aloes and cascara)

(५) तन्त्रिका-पेशी-उद्दीपक (neuromuscular stimulants) जैसे फाइसोस्टिग्मिन थाइरायड-एक्सट्रैक्ट (thyroid extract) या सत्व, पोस्ट पिट्यूटरी (post pituitary) आदि।

विरेचक औषधियां निम्नलिखित कार्यों के लिये व्यवहृत होती हैं-

(१) मलावरोध (constipation) दूर करने के लिये।

(२) आंतों से विषाक्त, विषजनक, प्रदाहक या हानिकारक द्रव्यों के उत्सर्जन के लिये।

(३) याकृत, वृक्कीय या हार्दिक जलशोथ (hepatic, renal and cardiac dropsies) में शरीर से जल कम करने के लिये।

(४) रक्त से कतिपय पुरीष-द्रव्यों को निकालने के लिये।

(५) रक्तभाराधिक्यजन्य मूर्छा की दशा में, रक्तदान (blood-

pressure) घटाने के लिये।

आन्त्रीय-कषाय औषधियां—

(intestinal astringents)

इस वर्ग की औषधियां अपने स्तम्भक या संकोचक गुणों द्वारा रस निःस्सरण तथा रसस्रवण कम करने या रोकने के लिये व्यवहृत होती है। मुख्यत. निम्नलिखित ३ वर्गों में इनका वर्गीकरण किया जाता है—

वानस्पतिक-कषाय (vegetable astringents) ये अन्तर्निहित टैनिन (tannin) द्वारा प्रोटीनों के अवक्षेपण द्वारा काम करते हैं। प्रत्येक कषाय-औषध न्यूनाधिक मात्रा में रक्तस्तम्भक भी होते हैं। इनके प्रयोग द्वारा आन्त्रतल पर एल्व्यूमिन का एक सूक्ष्म छादिनाम्बर या आवरण बन जाता है, जो प्रदाहित श्लैष्मिक कला की रक्षा करता है और हानिकारक तथा विषाक्त कणों के अवशोषण को रोकता है।

शौल्विक सारों के कुछ विशेष विषों को अवक्षेपित करके अस्थायी रूप में अक्रिय (inactive) कर देने के लिये तथा अतिसार (diarrhoea) की चिकित्सा के लिये इनका प्रयोग होता है। बृहदन्त्रप्रदाह (inflammation of colon) में वस्ति या अनीमा (enema) द्वारा आन्त्र-प्रक्षालन (bowel levage) के लिये इनका तनुकृत विलयन (dilute solution) का प्रयोग होता है। स्तम्भक गुणों के कारण घावों और जले हुए स्थान पर मरहम-पट्टी के लिये तथा रक्तस्रावी अवस्थाओं में रक्तस्तम्भन के लिये इनका प्रयोग होता है।

इस वर्ग की मुख्य औषधियां कत्था, टैनिक एसिड, क्रेमेरिया, हमामेलिस (tannic acid, catechu, krameria, hammamelis) आदि हैं।

(२) कषाय-धातु, जैसे बिस्मथ, लोहा आदि Bismuth Iron etc

(३) तनु अम्ल (dilute acid), जैसे तनु सल्फ्यूरिक अम्ल (dilute sulphuricacid) जो एल्व्यूमिन-आतञ्चन (albumin coagulation) गुण के कारण कषाय होता है।

कृमि-नाशक या कृमि-उत्सारी औषधियां—

(anthelminthics).—

ये औषधियां कृमियों को मारने और आंतों से निकालने के लिये

प्रयुक्त होती हैं। ये ऐसी होनी चाहिये कि रोगी को बिना किसी तरहकी हानि पहुंचाये ही कृमियों को मार सकें, या कम से कम बेहोश करदें ताकि बाद में जुलाब देकर उन्हें आंतों से बाहर निकाल दिया जा सके इन्हें शरीर में अवशोषित भी नहीं होना चाहिये और मलोत्सर्जन या मलत्याग के साथ निकल जाना चाहिये। पेट खाली रहने पर ये औषधियां अधिक अच्छीतरह से काम करती हैं। ये निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित की जाती हैं:—

आन्त्रकृमियो पर क्रिया करने वाली औषधियां— नेमटोड्स वर्ग (nematodes) के कृमियों पर—

(१) वर्तुलकृमि (roundworm) के लिये—

सेन्टोनिन, हेक्सिलरिसोर्सिन, टेट्राक्लोरइथेन और चिनोपोडियम का तेल (santonin, Hexylresorcin, tatrachlor ethene and oil chinopodium)

सूत्र-कृमियों (threadworm) के लिये कार्बन टिट्राक्लोराइड, क्रिस्टलव्यायलेट, टेट्राक्लोरएथिलिन, डाइफेनन आदि। क्वासिया, कलुम्बा (calumba) और फेरिक क्लोराइड के सान्द्रित विलयन तथा साधारण नमक के विलयन की वस्ति या अनीमा।

(३) अंकुशकृमि (Hoakworm) के लिये—हेक्सिलरिसोर्सिनोल टेट्राक्लोरएथिलिन, कार्बन-टिट्राक्लोराइड, चिनोपोडियम का तेल, थाइमोल आदि।

(४) ट्राइकुरा (Trichura) वर्ग के कृमियों के लिये— उपरोक्त औषधियां।

(५) स्ट्राङ्गिल्वायड्स (strongiloids) के लिये— क्रिस्टल-व्यायलेट (crystal voilet)

सिस्टोड्स वर्ग के कृमियों पर कार्य करने वाली औषधियां— कार्बन टेट्राक्लोराइड, टेट्राक्लोर एथिलिन, मेलफर्न (male fern = पुं- पर्णाङ्ग) और कद्दू का बीज।

शरीर के अन्य अवयवों या अङ्गों में निवास करने वाली कृमियों की दवा.—

नेमाटोड्सवर्ग—'फाइलेरिया' के लिये— हेट्राजन, स्टिबोफेन, सोडि-

यग एन्टिमोनी टार्ट्रेट।

(ख) फ्लूक्स (flukes) के लिये— बिलरजिएसिस की चिकित्सा के लिये रिटब्रोफेन, एमेटिन।

(ग) लिवरफ्लूक के लिये— एमेटिन।

(घ) फेफड़ों के फ्लूक के लिये— एमेटिन, टार्टरएमेटिक।

आन्त्रकृमियों का संक्षिप्त जीवन वृत्तः—

(१) अंकुशकृमि.— खाली पैर ऐसी जमीन पर चलने से, जिस मिट्टी मे अकुशकृमि का लार्वा (larva) या इल्ली या नवजातक मौजूद हों, इसका संक्रमण होता है। लार्वा पादचर्म या पादतल में वेधकर शरीर में प्रवेश करता है। अधस्त्वगीय उतकों से होता हुआ अब यह लसिकावाहिनियों या सिराओ में प्रवेश करता है, जिसके द्वारा हृदय के दक्षिण खंड और वहां से फेफड़ों में पहुंचता है। वहां रक्त से निकल कर वायुकोषों (alveolii or air spaces) में प्रवेश करता है। यहां से वायुनली (bronchi) और श्वास नली (trachea) से होता हुआ स्वरयन्त्रनली (larynx) पहुंचता है। जहा से ग्रासनली (oesophagus) होता हुआ नीचे की ओर चल पड़ता है और आमाशय तथा छोटी आंतों मे सातवें दिन तक पहुंच जाता है। आंतों में यह अपने अंकुशों द्वारा श्लैष्मिककला में संलग्न हो जाते हैं। जहां तेजी से बढ़कर अन्त में प्रौढ़ावस्था प्राप्त करते है। साधारणतः यह ऊर्ध्व-क्षुद्रान्त्र या मध्यान्त्र में निवास करता है। यहां पर मादा अंडे देती है जो मल के साथ निकलते रहते है। उपयुक्त या अनुकूल वातावरण (तापमान ७५° फारेनहाइट) पाने पर अंडे से भ्रूण (embryo) निकलकर रैब्डिटिफॉर्म लार्वा बन जाता है। कुछ शारीरिक परिवर्त्तन के बाद यह संक्रामक फाइलेरियारूप नवजातक या लार्वा (infective-filariform larva) के रूप में बदल जाता है और अवसर पाने पर मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है।

(२) वर्तुलकृमि (Roundworm):— मल के साथ इसके अण्डे निकलते हैं, जो अनुकूल वातावरण मे (६६°६–१०४ डिग्री फारेनहाइट तापमान) जल या मिट्टीमें २–४ महीना तक जीवित रहता है। दूषित आहार, जल या साग सब्जी के साथ निगले जाने पर पेटमें

जानेपर आमाशयिक रस द्वारा अंडखोल या अंडप्रावर (egg shell) गल जाता है और भ्रूण उसमें से निकल जाता है। अब यह श्लैष्मिक कला को वेधकर रुधिर में पहुंचजाता है और प्रतिहारिणी सिरा (portal vein) और यकृत से होकर हृदय और वहां के फेफड़ों से होता हुआ अंकुशकृमि के प्रसंग में वर्णित मार्ग से आंतों में पहुंच जाता है, जहां धीरे-धीरे बढ़कर प्रौढ़ावस्था प्राप्त करता है। वयस्क कृमि संक्रमण काल से दो महीनों के अन्दर ही अंडे देने लगती है।

(३) सूत्रकृमि (threadworm)—

इस कृमि का संक्रमणभी दूषित आहार, जल, साग-सब्जी खानेसे होता है। अंडा से भ्रूण या लार्वा छोटी आंतों में बन जाता है, जहां से वे बड़ी आंतों में आकर उण्डुक (caecum) में निवास करते हैं, जहां दो सप्ताह के अन्दर प्रौढ़ हो जाते हैं, रात्रि में सो जाने के बाद, गर्भवती मादा कृमि मल-द्वार (anus) से बाहर निकलता है, वह से समीपस्थ परिगुदनलीय स्थान में अण्डे देती है, और आगे बढ़कर योनिनालिकों या मूत्राशय में कभी-कभी प्रवेश कर जाती है। गुदनली के निकट अंगुली से खुजलाने पर और उन्हीं गन्दी अंगुलियों से भोजन करने पर पुनः संक्रमण हो जाता है। सम्पूर्ण जीवन चक्र के लिये प्रायः दो सप्ताह समय लगता है।

(४) एन्टएमीबा हिस्टोलिटिका (Entamoeba Histolytica)

यह रोगाणु एमेबिक डिसेन्ट्री उत्पन्न करता है। यह रोग रोगवाहक (carriers) मनुष्यों, दूषित जल, मक्खियों तथा कच्चे, दूषित शाक-सब्जी द्वारा फैलता है। परिपक्व पुटी (cyst) के अन्दर अनुकूल वातावरण तथा आर्द्रता में मल के साथ निकलने के बाद २-३ सप्ताह तक ये जीवित रहते हैं।

❀ दूसरा अध्याय ❀

❀ श्वसन-संस्थान पर काम करनेवाली औषधियाँ ❀

श्वसन क्रिया की परिभाषा और उद्देश्य:—

नियमित रूप से श्वास लेने और छोड़ने (श्वसन प्रश्वसन) की क्रिया को श्वसनक्रिया कहते हैं। जिसके अन्तर्गत अन्तःश्वसन (inspiration) तथा बहिःश्वसन (expiration) भी सम्मिलित हैं। इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य आक्सीजनयुत शुद्धवायु फेफड़ों के माध्यम से शरीर में पहुंचाना और कार्बन डायक्साइडयुत दूषितवायु को शरीर से बाहर निकालना होता है। उपरोक्त दोनों क्रियायें उस मनुष्य की शारीरिक चेष्टाओं या श्रम की मात्रा पर निर्भर करती हैं। फेफड़ों और ऊतकों में यह गैसीय विनिमय (gaseous exchange) गैस-विनिमय के साधारण भौतिक नियम के अनुसार ही होता है, यानी अधिक तनाव (tension) वाले स्थान से कम तनाव वाले स्थान को प्रसृति या व्यापन (diffusion) होता है, और समता स्थापित हो जाने के बाद यह क्रिया रुक जाती है।

अन्तःश्वसन (inspiration)

प्रकृत श्वसन क्रिया के तीन क्रम होते हैं — (१) स्थिर या स्थैर्यावस्था। (२) अन्तःश्वसन तथा (३) बहिःश्वसन।

पहिली अवस्था में फुफ्फुसावरक गुहा या प्लुरलकोटरी (pleural cavity) में फौफ्फुसिक ऊतकों के स्थितिस्थापक अभ्याकर्षण (recoil) के कारण ऋणात्मक-दाब (negative pressure) या चाप उत्पन्न होता है। जबकि फेफड़ों के अन्दर बाह्यवातावरण के बराबर ही दाब होता है। यानी ७६० मिलिमिटर पारद (760 m. m. of Hg)। अन्तःश्वसन क्रियामें पेशिक क्रियाओं (muscular action) द्वारा वक्षोदरमध्यस्थ पेशी (Diaphragm) तथा वक्षप्राचीर (chest wall) की पेशियों के संकोच के कारण वक्षगुहा का विस्तार या

फैलाव प्रत्येक दिशा में बढ़ जाता है। डायफ्राम संकुचित होकर उदर की ओर उतर आता है। इसका मध्य भाग चिपिट हो जाता है, जिससे वक्षगुहा का आयतन (volume) बढ़ जाता है। छाती की निचले भागों की पसलियां अन्दर खिंच जाती हैं और उदर बाहर की ओर निकल आता है। वक्षगुहा का विस्तार होने से फेफड़े फैल जाते हैं, जिनमें बाह्यवातावरण से वायु आकर भर जाती है।

बहिःश्वसन क्रिया (act of expiration) में:—

(१) वक्षगुहा मे ऋणात्मक दाब उत्पन्न होता है।

(२) वक्षप्राचीर स्थितिस्थापक अन्थाकर्षण द्वारा पुनः पूर्व स्थितिमें आ जाता है।

(३) उदर-प्राचीर भी पुनः सामान्य स्थिति में आजाता है। फेफड़ों में गैसों का विनिमय या अदल-बदल यानी वायुकोषों या एल्वियोलाइ (alveolii) की वायु से आक्सीजन का रक्त में आने और रक्त से कार्बन डायक्साइड का एल्विओलाइ में निकालने की क्रियायें सामान्य भौतिक नियम के अनुसार होती हैं। यानी प्रसृतिदर (rate of diffusion) आक्सीजन और कार्बन डायक्साइड के एल्वियोलर वायु (alveolar air) और रक्त में इनके दाब-भेद के अनुपात में ही होता है। एल्विओलर वायु मे गैसों का औसत प्रतिशत सघटन निम्नलिखित होता है:—

आक्सीजन	१४.५
कार्बन डायक्साइड	५.५
नाइट्रोजन	.७६

आक्सीजन और कार्बन डायक्साइड का विभिन्न अवयवों मे दाब का तनाव निम्नलिखित होता है:—

	आक्सीजन का दाब या तान मरकरी (Hg) के मिलीमिटर मे	कार्बनडायक्साइड मरकरी (Hg) मिलिमिटर में
श्वाङ्कियलनली में	१५०-५२	शून्य
एल्वियोलर वायु में	१०६	४०
धमनी-रुधिर मे (arterial blood)	१०० या कम	४० या कम
सिरीय-रक्त में (in venous blood)	३५	४६
उत्तकों में (in tissues)	०-३५	४७ या अधिक

ऊपर की तालिका से विदित होगा कि कार्बनडायक्साइड या दाब आक्सीजन की अपेक्षा हमेशा रुधिर में अधिक और एल्विओलर वायु में कम होता है और इसी भेद के कारण इनका विनिमय या अदल-बदल सम्भव होता है।

रक्त मे मुख्यतः नाइट्रोजन, आक्सीजन और कार्बनडायक्साइड गैस होते हैं जो वियोज्य रासायनिक संयोजन में या रक्तविलीन रहते हैं। १०० सी. सी. धमनी-रक्त (arterial blood) का आक्सीजन क्षमता १८.५ और सिरीय रक्त का १५ होता है। आक्सीजन हिमोग्लोबिन के साथ वियोज्य संयोजन में रहता है (आक्सीहिमोग्लोबिन) धमनिक-रक्त में आक्सीजन का दाब १०० मिलिमिटर पारद और सिरीय रक्त में केवल ४० होता है, अतएव उत्तकों में आक्सीजन सरलतापूर्वक रुधिर से निकलकर उत्तकों में पहुंच जाता है। हिमोग्लोबिन से आक्सीजन का विलगाव या विनिमय दर ताप, कार्बनडायक्साइड-दाब, आक्सीजन दाब तथा विद्युद्विश्लेष्य (electrolytes) आदि पर निर्भर करता है। अब ऊत्तक-श्वसन-क्रिया (tissue respiration) द्वारा इस आक्सीजन का उत्तकों द्वारा उपयोग होता है। इस क्रिया में आक्सीजन रुधिर से, जहां इसका दाब १०० मिलिमिटर पारद होता है, उत्तकों में जहां यह दाब १० मिलिमिटर होता है, चला जाता है और वहांसे कार्बन डायक्साइड, हाइड्रोजन और अन्य दूषित

पदार्थ सिरीय रक्त में आ जाते हैं। ये क्रियायें बहुत जटिल होती है और सम्भवतः ग्लूटाथिओन (glutathione) आक्सिडेस-संहति (oxidese system) या साइटोक्रोम (cytochrome) जैसे:-रञ्जक द्रव्यों के जरिये क्रियान्वित होती हैं।

ऊत्तकों तथा पेशियों में कार्बनडायक्साइड का दाब प्रायः ५०-६० मिलिमीटर पारद होता है, जबकि रक्त-केशिकाओं (blood capillaries) में केवल ३५ मिलिमिटर। अतएव कार्बनडायक्साइड ऊत्तकों से लसिकारसमें, और उससे रक्त रस या प्लाज्मामें; और आक्सीजन लोहिताणु (R. B. C.) के हिमोग्लोबिन से प्लाज्मा में, प्लाज्मा से लसिकारस (lymph) और उससे ऊत्तकों में प्रसृत हो जाता है।

ऊत्तक-श्वसन-क्रियाका शारीरिक चेष्टाओंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है यानी अधिक शारीरिक श्रम करने पर उसी अनुपात में इसमें भी वृद्धि होती है।

श्वसनक्रिया का नियन्त्रण —

श्वसनाङ्गों (respiratory organs) बाह्य वातावरण, रुधिर, रुधिर वाहिकातन्त्र (रक्तपरिवहन संस्थान) स्नायु (nervous system) संस्थान तथा श्वसन संस्थानों मे अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और इनमे किसी के व्यतिक्रम या गड़बड़ी का प्रभाव श्वसन-क्रिया पर पड़ता है। श्वसनक्रिया का नियन्त्रण सुषुम्नाशीर्षक तथा मस्तिष्क-सेतु (medulla oblongata and pons) में स्थित एक स्वायत्त श्वसनकेन्द्र द्वारा होता है। इस केन्द्र के अन्तर्गत सम्भवतः एक अन्त श्वसन केन्द्र तथा एक बहि:श्वसन केन्द्र होताहै, जो इन दोनों क्रियाओं को नियन्त्रित करते हैं।

श्वसनकेन्द्र में सारे शरीर के केन्द्रगामी सूत्रों या तन्त्रिकाओं द्वारा सूचना पहुचती रहती है, विशेषतः—

विशेष चेतनाङ्गों (जैसे आंख, नाक, कान आदि) अन्त्यस्थ या आशयिक बहिर्गामी सूत्रों, ऊर्ध्व श्वसनमार्गों तथा वेगस-तन्त्रिका (Vagus nerve) के स्वरयान्त्रिक ऊर्ध्वशाखा द्वारा।

आवश्यकतानुसार नियन्त्रक आज्ञायें केन्द्र मे निम्नलिखित आज्ञा-वाही, अपवाही (efferent) सूत्रों द्वारा प्रसारित होती रहती हैं —

(१) मध्यच्छद (Diaphragm) को जानेवाली मध्यच्छदीय तन्त्रिका (phrenic nerve)

(२) पर्शुकान्तरीय तथा औदरिक पेशियोंको जानेवाली तन्त्रिकायें

(३) क्रिकोथायराइड पेशी को जाने वाले ऊर्ध्वस्वरयान्त्रिक वात सूत्र के चालक-सूत्र (motor fibres)

(४) स्वरयन्त्र की अन्य पेशियोंको जानेवाले अधोस्वरयान्त्रिकसूत्र

(५) वेगस तन्त्रिका के श्वासनली और फेफड़ों (bronchi and lungs)को जानेवाली शाखायें। श्वसनकेन्द्रकी स्वायत्तक्रिया पर शरीर के विभिन्न अङ्गों से आईहुई सूचनाओं तथा रक्त के रासायनिक परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। रक्त में कार्बनडायक्साइड की मात्रा अधिक होने पर श्वसनगति मे वृद्धि हो जाती है और आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाने पर गति और गम्भीरता में कमी हो जाती है। इस क्रिया पर आक्सीजन की अपेक्षा कार्बनडाक्साइड की मात्रा में परिवर्तन का अधिक विशद प्रभाव पड़ता है। जैसे कार्बनडायक्साइड दाब मे २% वृद्धि होने पर फुफ्फुसीय-सवातन (pulmonary ventilation) में ५०% वृद्धि हो जाती है। अतएव रुधिर की गैसीयमात्रा में (यानी कार्बनडायक्साइड मात्रा में वृद्धि या आक्सीजन-दाब में कमी किसी बाह्य या आन्तरिक कारणों से उत्पन्न परिवर्त्तन श्वसनकेन्द्र को प्रभावित कर, इसकी स्वायत्त क्रिया को भी परिवर्तित कर देता है। हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (hydrogen ion concentration) में थोड़ा परिवर्तन भी अत्यधिक प्रभावकारी होता है। प्रतिसंक्रमित क्रिया द्वारा शरीर के विभिन्न अङ्गोंसे केन्द्रगामी प्रेरणाओं द्वाराभी श्वसनकेन्द्र प्रभावित होता है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्रिया वेगस तन्त्रिकाओं की होती है। जो सम्भवतः श्वसन गतिका और रासायनिक कारक श्वास का गहराई का नियन्त्रण करते हैं

फेफड़ों तथा श्वास-नलिकाओं का तन्त्रिका प्रदाय—

(nerve supply of lungs and bronchi)

फेफड़ों का तन्त्रिकाप्रदाय अग्र तथा पश्चात्फौफ्फुसीय तन्त्रिका चक्र द्वारा होताहै, जो वेगसतन्त्रिका तथा सांवेदनिक तन्त्रिकाओंकी शाखाओं प्रशाखाओं द्वारा बनते हैं। इन तन्त्रिका चक्रों से तन्त्रिकासूत्र वायु-

नलियों के साथ-साथ जाते हैं और श्वासनलीय पेशियों (bronchial muscles) में चालक सूत्र प्रति १०० सी. सी. धमनी-रक्त (arterial blood) में प्रायः ५० सी.सी. कार्बनडायक्साइड रहता है। यदि इस मात्रा में वृद्धि होती है तो रक्त में कार्बोनिक एसिड गैस (Hco3) बनता है। उपरोक्त गैस उत्पत्ति से रक्त में हाइड्रोजन अयन संकेन्द्रण बढ़ जाता है, जिसका निराकरण रक्तप्रोटीन के साथ संयुक्त होने या जुड़ने से जो बाइकार्बोनेट बनता है, उसके द्वारा होता है। सूत्र के रूप में यह निम्नलिखित प्रकार से दिखाया जा सकता है:—

$$HO_2 + CO_2 + BHb \rightleftharpoons B\ H\ CO_3 + H\ Hb$$

where— H_2O = water
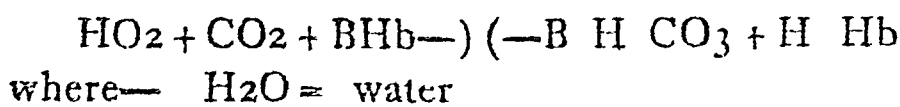
CO_2 = carbon dioxide

Hb = Haemoglobin

B = Base

HCO_3 = Carbonic acid gas

H Hb = Haemoglobin without the base

यह क्रिया विवर्त्तनिक (reversible) होती है और यह विवर्त्तन क्रिया फेफड़ों में होती है तथा श्वासनलीय श्लैष्मिक कला (bronchial mucus membrane) तथा एल्विओलाइ या वायुकोषों को अभिवाही सूत्र देते हैं। इन तन्त्रिकासूत्रों पर सूक्ष्म प्रगंड (ganglion) होते हैं। वायु नली सकोचक पेशियों के तन्त्रिकासूत्र सम्भवतः वेगस तन्त्रिकाओं से आते हैं।

आक्सीजन का महत्व:—

(importance of oxygen)— आक्सीजन प्राणिमात्र के लिये अत्यावश्यक वस्तु है। क्योंकि इसके बिना जीवित रहना असम्भव होता है। इसीलिये इसे प्राणवायु भी कहा जाता है। रोगचिकित्सा के लिये उन अवस्थाओं में इसका विशेष महत्व होता है, जिनमें या तो फेफड़ों द्वारा वायुकोषों से रक्त में आक्सीजन नहीं आ पाता, या किसी कारणवश रुधिर में इसकी कमी हो जाती है।

रक्त में इसकी कमी (एनोक्सिसिया या रुधिर आक्सीजन न्यूनता)

निम्नलिखित अवस्थाओं में उत्पन्न होती है:—

(१) न्यून रुधिर-आक्सीजन-दाब

(२) आक्सीजन दाब या भार सामान्य रहते हुए भी क्रियात्मक हिमोग्लोबिन की कमी (जैसे रक्ताल्पता या धनिमिया, कार्बन मोनोक्साइड विषायन आदि)

(३) रक्तकों को दोषावह या अव्यवस्थित आक्सीजन-प्रदाय (निप्रवाह प्रकार stagnenttype) जैसे— जीर्ण हार्दिक रोग, रक्तस्राव, रुधिरपरिवहन क्रिया लोप आदि।

श्वासरोधजन्य आक्सीजन न्यूनता (asphyxial type)

यह अवस्था रुधिर में आक्सीजन नहीं पहुंच सकने के कारण उत्पन्न होती है। जैसे— न्यूमोनिया में, पानी में डूबने पर, संवेदनाहरण क्रिया में अवसाद होने पर, हार्दिक रोग जैसे हार्दिक रक्त स्तम्भन (coronary thrombosis) फेफड़ों का शोथ (pulmonery oedema)

कफ प्रतिक्षेप (cough reflex)

यदि कोई बाहरी वस्तु श्वासनालियों में चली जाती है तो प्रतिक्षेपक क्रिया द्वारा गहरा श्वास लेने के बाद बलात्-उच्छ्वास (forced expiration) द्वारा उसे श्वासनलीसे निकालनेका प्रयत्न स्वतः होता है इस क्रिया में कण्ठद्वार बन्द होजाता है और औदरिक पेशियोंका आकस्मिक बलात् संकोच होता है। जिससे फेफड़ों का वायु उस वस्तु के साथ बाहर निकल आता है। केन्द्रगामी सूचनायें ऊर्ध्व स्वरयन्त्रीय नाड़िकाओं द्वारा श्वसन केन्द्र में पहुंचती हैं, जहां से इस क्रिया की उत्पत्ति होती है। अन्य स्थानोंसे केन्द्रगामी उद्दीपक सूचनाओं द्वारा भी कफ-प्रतिक्षेपक-क्रिया उत्पन्न हो सकती है. जैसे कान खुजलाने से खांसी आना।

कफोत्सारी या कफक्षारक औषधियां—

(Expectorants)

ये औषधियां कफ को ढीला कर श्वसनपथ से बाहर निकालती हैं। ये चार वर्गों में विभाजित की जाती हैं:—

(१) प्रत्यावर्तक कफनाशक (riflex expectorants):— जो आमाशय स्थित वेगस नाड्यन्तों (vagus nerve endings) द्वारा वमन या ब्रॉन्कोसिक्रेटरी केन्द्र (bronchosecretory center) को उत्तेजित कर प्रत्यावर्तक क्रिया द्वारा वायुनलियों पर कार्य करती हैं। अधिक मात्रा में व्यवहृत होने पर ये औषधियां वमनकारी (emetic) होती हैं। उदाहरण:— आइपेकाकुआना, स्क्वील, एमोनियम कार्बोनेट

(२) केन्द्रीय कफनाशक (central expectorants)— जो केन्द्र को प्रभावित करती हैं, जैसे एपोमार्फिन।

(३) स्रावक नाड्यन्तों के उद्दीपक (stimulants of the secretory nerve endings)

उदाहरण— पाइलोकार्पिन।

(४) ब्राङ्कियल ग्रन्थियोंको उत्तेजितकर कार्य करनेवाली औषधियां (stimulants of the bronchial secretory glands)— ये ब्राङ्कियल श्लैष्मिक कला द्वारा स्रवित होने पर कार्य करती हैं। जैसे— आयोडाइड्स (iodides) क्षार (alkali) आदि।

कफशामक औषधियां (cough sedatives)

ये औषधियां अत्यधिक कष्टदायी और सूखी खांसी को रोकने के लिये व्यवहार की जाती हैं। ये निम्नलिखित रूप में कार्य करती हैं:—

शोथ, उग्रदाह या संताप शान्त करके और श्लेष्मास्रवण बढ़ाकर जैसे प्रत्यावर्तक वर्ग की औषधियां (आइपेकाकुआना या एपोमोर्फिन) या लाइकोरिस (liquorice) गोन्द (acacia) या ग्लीसरीन जैसी स्निग्ध (चिकनी) और शामक औषधियां।

अत्यधिक कफ-प्रत्यावर्तक क्रिया को नियन्त्रित करके जैसे अफीम और बेलाडोना वर्ग की औषधियां (आइपेकाक-एट्-ओपिआइ पाउडर, टिंचर कैम्फर कम्पाउन्ड आदि।

गाढ़ और दुर्विच्छेद्य (tenaceous) म्यूकस को तीव्र करके। जैसे— लवणवर्ग (salines) की औषधियां पोटैशियम आयोडाइड, एमोनियम क्लोराइड आदि।

आक्षेप-निवारक औषधियां:—

(antispasmodics)

ये औषधियां ब्रांकियल पेशियोंके आक्षेप निवारण द्वारा कार्य करती हैं और श्लेष्म-क्षरण तथा निष्कासन में सहायक होती हैं। दमा (asthma) तथा जीर्ण ब्राङ्काइटिस (chronic bronchitis) आदि रोगों में इनका अधिकतर व्यवहार होता है। उदाहरण— बेलाडोना लोबेलिया, ग्रिन्डेलिया, एफेड्रीन, एड्रीनलीन आदि।

एनालेप्टिक्स या उत्तेजक तथा शक्तिवर्धक औषधियां —

(analeptics)

ये औषधियां श्वसनकेन्द्र और वासोमोटर केन्द्र (vasomotor center) पर क्रिया द्वारा आपातकाल में रक्त-दाब (blood pressure) बढ़ाकर रोगी को पुनर्जीवित करने में सहायता करती हैं। जैसे- कोरामिन, एट्रोपिन, लोबेलिन, एफेड्रिन, पिक्रोटॉक्सिन आदि। ऊपर वर्णित औषधि-वर्गों के अतिरिक्त श्वसन-संस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियों की दो और मुख्य श्रेणियां हैं:— (१) प्रतिदोषरोधी, निःसंक्रामक या एन्टिसेप्टिक्स (antiseptics) और दुर्गन्ध-नाशक, जैसे- क्रियाज़ोट, गुइकोल (creosote, Guiacol)

(२) श्वसन-पथ के एक्स-रे चित्रण में प्रयुक्त होने वाली औषधियां— जैसे आयडिन के कल्प, जैसे— लिप्वायडल (lipoidal) आदि।

तीसरा अध्याय

—मूत्र-संस्थान पर कार्य करने वाली औषधियां—

(drugs acting on urinary system)

मूत्र संस्थान में निम्नलिखित अवयव सम्मिलित हैं:—

(१) दो वृक्क या गुर्दे (kidneys) जिनमें मूत्र बनता है।

(२) दो गविनियां या मूत्रवहा-नलियां (ureters) जो मूत्र-वहन करती हैं।

(३) एक मूत्राशय जहां मूत्र एकत्रित होता है, और

(४) एक मूत्रनली या मूत्रमार्ग (urethra) जिसके द्वारा मूत्र बाहर निकलता है।

वृक्क या गुर्दा (kidneys)—

प्रत्येक वृक्क सेम (bean) के आकार का और प्रायः ४ १/२ इन्च लम्बा और ४ १/२ औंस वजनका होताहै। यह औदरिकगुहा के पिछले भाग में रीढ़ के दोनों ओर १२ वीं पर्शुकाओं से लेकर तीसरी कटि-कसेरुका तक रहता है। यह अनेक स्फनाकार (wedgeshaped) खंडों से बनता है, जिनका विस्तृत अंश बाहर की ओर तथा संकीर्ण स्थान भीतर की ओर होताहै। संकीर्ण भाग पुटक या कैलिसेस (calyses) नामक नलियों में मिलता है, जो स्वयं आपस में मिलकर वृक्क-निवाप (pelvis of kidney) में मिलते हैं। जहां से गविनियों (ureters) का ऊपरी भाग प्रारम्भ होता है।

रचना की दृष्टि से यह अवयव एक सौत्रिकप्रावर (capsule) में आवेष्टित और संयोजीतन्तुओं द्वारा संयोजित असंख्य नलिकाओं का समूह होता है। जिनके मध्य और अन्तर्गामी सौत्रिक-पट्टिकाओं (trabeculae) के साथ-साथ जाती हुई अनेक रक्तनलिकायें होती हैं।

मुख्य रूप से वृक्क के दो भाग होते हैं —

(१) बाह्यक या कार्टेक्स (cortex) जिसमें ग्लोमेरुलस (glomerulus) और कुण्डलित नलिकायें (convoluted tubules)

से निकलनेवाली सिरिकायें (venules) आपस में मिलकर अन्त में वृक्क-सिरा (renal vein) बनाती हैं। ग्लोमेरुलस और नलिकायें (tubules) सम्मिलित रूप से मूत्रल संरचना का एक इकाई बनाती है, जिसे नेफ्रोन (nephron) कहते हैं। प्रत्येक वृक्क में इस प्रकार के प्रायः दो लाख नेफ्रोन होते हैं।

तन्त्रिकायें (nerves)— स्प्लाङ्कनिक, वेगस और सिलियक गैङ्ग-लियन से आनेवाली शाखायें वाहिनियों के चारों ओर तन्त्रिका-जाल बनाती है। लसीका वाहिनियां (lymphatics) एक समूह वृक्कवाह्यक से दूसरा मध्यक और वृक्क के ग्रन्थिकोषों से निकलकर वृक्क-लसीका वाहिनी से आ मिलती हैं।

वृक्क के कार्य (functions of kidneys)

(१) शरीर और खून से विभिन्न-उच्छिष्टपदार्थों (waste pro-ducts) नाइट्रोजन-चयापचय के त्याज्य द्रव्यों (जैसे बेन्जोइक एसिड हिप्पुरिक एसिड आदि), शरीर में काम नहीं आनेवाले विभिन्न कार्ब-निक और अकार्बनिक द्रव्यों (organic and inorganic) को उत्स-र्जितकर (निकालकर) शरीर रसों का प्रकृत या स्वाभाविक संघटन अविरत बनाये रखता है।

(२) अम्ल (acid) तथा क्षारीय (alkaline) तत्वों का यथो-चित उत्सर्जन करके रुधिर की प्रतिक्रिया प्रकृत बनाये रखता है।

(३) आवश्यकतानुसार जलोत्सर्जन कर जल संतुलन (water balance) और शारीरिक तरलों का संघटक और मात्रा स्थिर रखता है।

(४) रुधिर से औषधियां (जैसे आयोडाइड्स, सेन्टोनिन आदि) जीवाणु (जैसे बी० कोलाई या बैसिलस टाइफोसस) तथा अन्य विषाक्त और विषजनक द्रव्यों को उत्सर्जित करता है।

(५) निस्यन्दन-क्रिया (filtration action) द्वारा प्रोटीन और अन्य आवश्यक तत्वों को रुधिर से बाहर निकलने से रोकता है और रसाकर्षण-दाब (osmotic pressure) बनाये रखता है।

(६) लवण, शर्करा, हिमोग्लोबिन, पैत्तिक द्रव्यों और जल आदि अन्य शरीरावश्यक पदार्थों का पुनः अवशोषण करता है।

(७) यूरिया, सल्फेट, हिप्पुरिकएसिड आदि का उत्सर्जन करता है

मूत्रोत्पति या मूत्र का बनना (formation of urine)

मूत्र सम्भवतः दो क्रियाओं के प्रभाव से बनता है:—

(१) निस्यन्दन या छनना (filtration) और

(२) पुनःअवशोषण (reabsorption)

(१) निस्यन्दन क्रिया— निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती है—

(१) ग्लोमेरुलस में रक्त-दाब।

(२) फिल्टर या निस्यन्दक यानी बोमैन्स कैप्सुल्स की अवस्था।

(३) निस्यन्दक के बाहर और भीतर के तरलों का रसाकर्षण-दाब (osmotic pressure) ग्लोमेरुलस के कैशिकाओं में रुधिर परिभ्रमण जोरों से होता है, जिससे रक्त का जलीय अंश अलग होकर विलीन द्रव्यों के साथ फिल्टर (बोमैन्स कैप्सुल्स) से छनकर नलिकाओं में आजाता है। यह क्षारीय प्रकृतिका होता है और इसमें यूरिया, सल्फेट, क्लोराइड, फॉस्फेट आदि द्रव्य होते हैं। कुण्डलित नलिकाओं में इसमे परिवर्तन हो जाता है। इसकी प्रतिक्रिया आम्लीय हो जाती है और यूरिया, यूरिक अम्ल तथा अन्य नाइट्रोजनयुत तत्व उत्सर्जित होकर इसमें बढ़ जाते हैं। जल अवशोषण द्वारा मूत्र भी अधिक सान्द्रित हो जाता है।

(२) पुनःअवशोषण (Reabsorption)— जैसा कि कहा जा चुका है; जल तथा शर्करा, क्लोराइड्स, सोडियम बाइकार्बोनेट्स जैसे थ्रेशोल्ड पदार्थों (threshold substances) और पोटैशियम, कैल्शियम, क्लोरिन जैसे अर्धथ्रेशोल्ड पदार्थों (semi-threshold substances) का भिन्न-भिन्न क्रम और मात्रा में चयनात्मक पुनरवशोषण होता है। कुछ अन्य द्रव्य जैसे एमोनिया, फास्फेट्स आदि जो वृक्क-कोषों द्वारा निर्मित होकर मूत्र में उत्सर्जित होते हैं। क्रियाटिनिन सल्फेट तथा प्रोटीन चयापचय के अवशिष्ट या दूष्य पदार्थों जैसे अ-थ्रेशोल्ड पदार्थ (non-threshold substances) जिनका शरीर में कोई उपयोग नहीं है वा, मूत्र में उत्सर्जित हो जाते हैं।

वृक्क से स्रवित होकर मूत्र गवीनियों द्वारा आकर मूत्राशय में जमा होता है। अधिक मूत्र जमा हो जाने पर, मूत्राशय में इसका दाब बढ़ जाता है। जब १८०-२५० सी. सी. मूत्र जमा होकर दाब जल के १२०—

१५० सिलीमिटर तक हो जाता है तो इसकी सूचना केन्द्रगामी संज्ञा सूत्रों द्वारा उन केन्द्रों और मेरुदण्ड के कटि-त्रिक प्रदेश में अवस्थित अधोकेन्द्र (lower center) में पहुंचती है। वहां से आज्ञावाहक सूत्रों द्वारा प्रेरणा पाकर मूत्राशय की पेशियां सिकुड़ने लगती हैं और मूत्राशय द्वारों की संकोचक-पेशियों (sphincters) की क्रिया का निराकरण होने पर मूत्रनलीमें मूत्र आने लगता है और मूत्र त्याग होने लगता है। मूत्रत्यागन क्रिया तीन कारणों से नियन्त्रित होती है.—

(१) ऊर्ध्व केन्द्रों (higher centers) से आये हुए निर्देश।

(२) अधोकेन्द्रों से आये हुए निर्देश।

(३) ऐच्छिक या संकल्प-शक्ति (voluntary)

सम्भवतः मूत्रत्याग सांकल्पिक प्रेरणा द्वारा उदरिक और विटप-प्रादेशिक (abdominal and perineal) पेशियों के संकोच द्वारा प्रारम्भ होता है और बाद में अन्य दोनों कारकों द्वारा यह क्रिया जारी रहती है।

मूत्र (urine)—

२४ घण्टों की सम्पूर्ण राशि— लगभग १५०० सी. सी. विशिष्ट गुरुत्व (specific gravity)— गृहीत जल राशि और अन्तर्निहित ठोस द्रव्यों के अनुसार १०१५–१०२५

प्रतिक्रिया— किंचित अम्लीय।

घन द्रव्य— ४–५% या २४ घण्टों में ६५–७५ ग्राम।

कार्बनिक समास	ग्राम।	अकार्बनिक-समास	ग्राम।
यूरिया	२०-३०	सोडियम क्लोराइड	१०-१५
यूरिक एसिड	०.५-१ ७५	फास्फोरिक एसिड	२.५-३.५
क्रियेटिनिन	१-१.५	सल्फ्यूरिक एसिड	३-३.०
हिप्युरिकएसिड	०.१ १.५	पोटेशियम	२-३
नाइट्रोजन अन्यान्य	१.१-७	सोडियम	४-६
प्रोटीनों से		कैल्शियम	०.१-० ३
२३-३० ग्राम		मैग्नेशियम	० २-०.५
		एमोनिया	० ५-१.५

मूत्रल या मूत्रवर्धक औषधियां (Diuretics)

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, ये मूत्रोत्पादन और मूत्र की मात्रा बढ़ाने वाली औषधियां होती हैं। ये निम्नलिखित वर्गों में विभाजित की जाती हैं:—

क्रियाशील ग्लोमेरूलाइ (functional glomeruli) की संख्या में वृद्धि करने वाली औषधियां, जैसे यूरिया और केफिन (urea and caffiene) जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, प्रत्येक वृक्क में प्राय: दो लाख ग्लोमेरूलाइ होते हैं; किन्तु किसी एक समय पर एक साथ इनमें प्राय: 1/3 ग्लोमेरूलाइ ही कार्य करते हैं। इस वर्ग की औषधें अधिक ग्लोमेरूलाइ को सक्रिय बनाती हैं और इसप्रकार सम्पूर्ण निस्यन्दक तल (filtering surface) भी बढ़ाते हैं।

ग्लोमेरूलस में धमनी-दाब बढ़ाकर रक्तपरिभ्रमण में वृद्धि करने वाली औषधियां:—

ग्लोमेरूलस में धमनीदाब और रक्त-परिभ्रमण की दर के अनुपात में ही गुर्दक्षरण क्रिया होती है। अतएव वे औषधियां जो रक्तपरिभ्रमण क्रिया में वृद्धि करती हों (जैसे डिजिटलिस, केफिन, आल्कोहल, ईथर आदि) या वृक्क वाहिनियों को विस्तीर्ण या विस्फारित (dilate) करती हों (जैसे स्पिरिट इथेरस नाइट्रोसि) या बहिर्गामी ग्लोमेरूलर-सिरा को संकुचित कर ग्लोमेरूलर-दाब बढ़ाती हों (जैसे पिट्यूटरी एक्सट्रेक्ट) ऐसी औषधियां मूत्रल औषधियों के रूप में कार्य करती हैं।

लवण गुण के कारण कार्य करनेवाली औषधियां:—

ये रक्त के आतनत्व या श्यानता (viscidity) में कमी करके ग्लोमेरूलर-दाब तथा छनने की क्रिया को बढ़ा देते हैं। नलिकाओं या ट्यूब्युल्स से पुनरवशोषण क्रिया भी कम करती हैं। जैसे यूरिया, लवण शर्करा, एमोनियम एसिटेट या साइट्रेट आदि।

अम्लायन (acidosis) उत्पन्न करके

जैसे अमोनियम या कैल्शियम क्लोराइड (ammonium and calcium chloride)। ये प्लाज्मा के 'अल्कली रिजर्व (alkali—

reserve में कमी करके, अ-कलिल-द्रव्यों (non colloidal elements) में वृद्धि करके तथा प्रोटीन के संग्रहण में कमी करके, ये औषधियाँ अपनी क्रिया करती हैं।

वृक्क पर स्थानीय रूप से कार्य करनेवाली औषधियाँ :—

ये औषधियाँ वृक्क कोषों के उद्दीपन द्वारा नलिकीय क्षरण (tubular secretion) बढ़ा कर या नलिकीय पुनरवशोषण (tubular reabsorption) कम करके मूत्रवर्धक क्रिया करती हैं। इस वर्ग में कैफीन, थियोब्रोमीन, क्षार, कैलोमेल, मर्सेलिल, बुकु (buchu) चन्दन तेल, पुनर्नवा तथा ग्लाइकोसाइड (glycosides) आदि हैं।

चिकित्सात्मक व्यवहारः—

(therapeutic indications)

प्लुराइटिस, प्लुरिसी तथा ऐसे अन्य रोगों में जिनमें शरीर-गुहाओं में जल-संचय हो जाता है।

हृद्-रोग या याकृत-रोगों द्वारा जलशोथ उत्पन्न होने पर। वृक्कीय-रोगों के जलशोथ में केवल कुछ विशेष चुनी हुई निरापद अल्प औषधियाँ ही प्रयुक्त हो सकती हैं।

नोट.— मूत्र-संस्थान पर कार्य करने वाली निम्नलिखित वर्ग की औषधियां भी हैं, जो निर्धारित पाठ्यक्रम के बाहर हैं, इसलिये इनका वर्णन नहीं किया गया।

रोगाणुनाशक या प्रतिदोष रोधी औषधियाँ—

जैसे मैन्डेलिक एसिड, हेक्सामीन, बुकु आदि।

निदानात्मक प्रयोग के लिये व्यवहार की जानेवाली औषधियाँ:

आयडोक्सिल, इन्डिगोकार्मिन, डायआयडोन आदि।

❀ चौदहवाँ अध्याय ❀
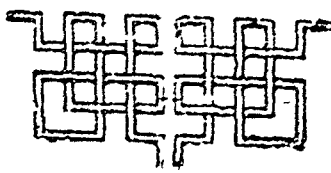
— रक्तस्तम्भक या प्रतिरक्त-स्रावी औषधियाँ —

(antihaemorrhagic drugs)

रक्तातञ्चन (coagulation of blood) खून का जमना

कटने पर रुधिर नलियों से निकलते समय खून तरल रहता है, किन्तु शीघ्र ही (३-५ मिनट तक) गाढ़ा होकर जेलीवत पिंड (jally-like mass) बन जाता है, जिसे रक्तावरूद्ध या खून का थक्का कहते हैं। कुछ समय के बाद इससे एक पीताभ-तरल अलग होजाता है, जिसे रक्तरस या सीरम (serum) कहते हैं। रक्तातञ्च या थक्का 'फीब्रिन' (fibrin) नामक तत्व का सूक्ष्म सूत्रजाल होता है, जिसमें रक्त के लोहिताणु फँसे रहते हैं।

रक्तातञ्चन-क्रिया सम्बन्धी सर्वाधिक प्रचलित हावेल्स-सिद्धान्त

रुधिर में एल्ब्युमिन, ग्लोब्युलिन और फिब्रिनोजेन रहते हैं।

(१) रुधिर का कैल्शियम अयन (ion) रक्त के प्रोथ्रोम्बिन को थ्रोम्बिन में परिणत कर सकता है, किन्तु साधारण अवस्था में ऐसा नहीं होता; क्योंकि रुधिर में इस क्रिया को रोकनेवाले प्रतिप्रोथ्रोम्बिन (antiprothrombin) या हेपारिन जैसे तत्व विद्यमान होते हैं। विक्षत होने या चोट लगने पर रक्तके चक्राणु या प्लेटलेट्स से थ्रोम्बो-काइनेस(thrombokinese) ऊतकों से सेफालिन (caphalin) नामक रक्तस्तम्भक तत्व निकलता है, जो प्रति प्रोथ्रोम्बिन का निराकरण या अकर्मीकरण कर देता है।

(२) थ्रोम्बिन नामक विकर फिब्रिनोजेन (fibrinogen) को फिब्रिन में परिणत कर देता है।

(३) और फिब्रिन तथा लोहिताणु मिलकर रक्तातञ्च या खून का थक्का बनाते हैं। प्रोथ्रोम्बिन निर्माणके लिये 'विटामिन-के' की आवश्यकता होती है। विटामिन 'सी' भी रक्तातञ्चन क्रिया में सहायक होता है

सूत्र-रूप में यह निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

प्रोथ्रौम्बिन-प्रतिप्रोथ्रौम्बिन (या यकृत से हेपारिन) + कैल्शियम आयन + सेफालिन (ऊतियों से) = प्रोथ्रौम्बिन + कैल्शियम + सेफालिन—प्रतिप्रोथ्रौम्बिन

(२) प्रोथ्रौम्बिन + कैल्शियम = थ्रौम्बिन

(३) थ्रौम्बिन + फिब्रिनोजेन = फिब्रिन

(४) फिब्रिन + लोहितारगु = रक्तातञ्च

रक्तातञ्चन-क्रियामें सहायता पहुंचानेवाली औषधियोंको आतञ्चक या रक्तातञ्चक (coagulants) कहते हैं। चिकित्सा के लिये निम्न-लिखित द्रव्य इस कार्य के लिये व्यवहृत होते हैं—

कैल्शियम लवण, सम्पूर्ण रुधिर रक्त रस या सिरम (जिसमें थ्रौम्बिन और थ्रौम्बोप्लास्टीन रहते हैं) सेफालिन, विटामिन 'के' और 'सी' काइ्गोरेड और सूक्ष्म मात्रा में सर्प विष और प्लेटलेट्स के अनेक व्यापारिक कल्प।

पांचवां अध्याय

हृद्वाहिनी-संस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां

(cardiovascular system)

रुधिरवाहिका तन्त्र या हृद्वाहिनी संस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां साधारणतः दो वर्गों में विभाजित की जाती हैं:—

हृदय पर कार्य करने वाली औषधियाँ—

(१) बलकारक (tonics)— जैसे डिजिटलिस, स्ट्रोफैन्थस, (squill) आदि।

(२) अवसादक (depressants)— जैसे एकोनाइट।

वाहिनियों पर कार्य करनेवाली औषधियां—

(१) रक्त-दाब बढ़ाने वाली—

[१] वाहिनी संकोचक जैसे एड्रिनलीन, एफेड्रीन, एर्गोटामिन, पिट्यूटरी आदि हैं।

[२] रक्तपरिमाण या आयतन बढ़ानेवाली औषधियां या वैसे पदार्थ— जैसे रुधिर प्लाज्मा या लवणजल आदि।

(२) रक्तदाब घटानेवाली औषधियां—

(१) वाहिनीप्रसारक जैसे एमिल नाइट्राइड, कार्बोकोल, एसिटिल कोलीन, नाइट्रोग्लिसरिन आदि।

(२) रक्त-परिमाण कम करने वाले प्रत्युपाय या औषधिया जैसे विरेचक औषधियां, रक्तस्रावन (blood letting)

हृदुत्तेजक औषधियां (cardiac stimulants)

ये औषधियां हार्दिक क्रिया क्षीण या लोप होने पर काम आती हैं और हृदय की कार्यक्षमता बढ़ाती है। ये निम्नलिखित वर्गों में विभाजित की जाती हैं —

(१) सान्वेदनिक नाडुयन्तों (sympathetic nerve endings) का उद्दीपन करनेवाली औषधियां— जैसे एफेड्रिन, एड्रिनलीन आदि।

(२) परासाम्वेदनिक नाड्यन्तों के स्तम्भन (paralyzing) द्वारा जैसे एट्रोपिन (atropine)

(३) सुषुम्नाशीर्षक (medula oblongata) के उत्तेजन द्वारा जैसे— कोरामिन, स्ट्रीक्निन, कपूर, लेप्टाजोल आदि।

(४) हृत-पेशी पर प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने वाली औषधियां— जैसे डिजिटलिस वर्ग की औषधियां।

हृत्-पेशी (myocardium) परिपोषक औषधियां—

(१) हृदय-रक्तपरिवहन (cardiac circulation) को व्यवस्थित या नियन्त्रित करनेवाली औषधियां जैसे डिजिटलिस, थियाब्रोमिन, थियोफाइलिन ग्लूकोस आदि।

(२) रक्त की न्यूनताओं की पूर्ति और हीनावस्था सुधारनेवाली औषधियां— जैसे लोहा, आक्सिजन आदि।

(३) प्रति संक्रमित रूप (reflexly) से कार्य करने वाली औषधियां— जैसे एमोनियां गैस का सूंघना।

हृदय-बलदायक औषधियां

(Cardiac tonics)

ये हृदय के परिपोषण तथा बल या तान (tone) में सुधार द्वारा कार्य करती हैं। ये धीरे धीरे किन्तु स्थायी रूप से कार्य करती हैं; जैसे डिजिटलिस, कैफीन, लोहा आदि।

वाहिनियों पर कार्य करनेवाली औषधियां—

रक्तवाहिनियों के तान या टोनका नियन्त्रण (control of tone of blood vessels).— रक्तवाहिनियां तन्त्रिक (nervous) और पेशी (muscular) तन्तुयुत नलिकायें होती हैं, जिनका छिद्र व्यास सुषुम्नाशीर्षक में अवस्थित वाहिनी नियन्त्रक-केन्द्र (vasomotor center) तथा मेरुदण्ड में अवस्थित कुछ अन्य केन्द्रों से वाहिनी-प्रसारक तथा वाहिनी-संकोचक तन्त्रिकाओं (vasoconstrictor and vasodilator nerves) द्वारा आने वाली प्रेरणाओं से नियन्त्रित होता है धमनियों की भित्ती में केवल संकोचक पेशी ही होती है, प्रसारक पेशी नहीं। रक्तप्रसारका वहन वाहिनियां अपनी पेशियों

तान द्वारा करती हैं, और यह तान मुख्यतः वाहिनी-संकोचक केन्द्र से आने वाली प्रेरणाओं द्वारा स्थिर बना रहती है। वाहिनियों में प्रसारक-पेशी नहीं होने से वाहिनी प्रसारक केन्द्र से आने वाली प्रसारक प्रेरणाओं के निरोध द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करते हैं।

स्मरणीय है कि वाहिनी-प्रसारक तथा संकोचक दोनों ही स्वायत्त तन्त्रिका संस्थान के अंग हैं। वाहिनी नियन्त्रक संस्थान केन्द्र से लेकर नाड़ीयन्त्रों तक किसी भी स्थान पर कार्य करने वाली औषधियों तथा शरीर के विभिन्न अङ्गों से आने वाली प्रेरणाओं द्वारा प्रभावित होता है। रक्तदाब (blood pressure) रुधिर द्वारा धमनीभित्ति पर पड़ने वाले पार्श्वीय या प्रान्तीय दाब को कहते हैं। यह वाहिनी संकोचक तथा प्रसारक तन्त्रिकाओं द्वारा नियमित होता है और निम्नलिखित कारकों से प्रभावित होता है:—

(१) रक्तपरिवहन में रुधिर का सम्पूर्ण परिमाण।

(२) धमनिकाओं (arteriolar) तथा केशिकाओं (capillaries) विशेषतः आशयिक या अन्त्यस्थ प्रदेश की धमनिकाओं का परिधीय-प्रतिरोध (peripheral resistance)। यह सभी कारकों में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन नलिकाओं के संकोच से प्रतिरोध बढ़ने से रक्तदाब बढ़ जाता है। इनके प्रसारित होने पर अधिकांश रुधिर यहीं रह जाता है। अतएव वाहिनीतन्त्र या परिवहन प्रवाह में रुधिर की कमी हो जाती है और रक्तदाब कम हो जाता है।

(३) प्रत्येक हार्दिक क्रियाचक्र में प्रक्षेपित रुधिर की मात्रा तथा हृदय की प्रगाढ़ता पर भी रक्तदाब निर्भर करता है।

(४) प्रत्यावर्तित रूप में कैरोटिड साइनस (carotid sinus) द्वारा भी रक्तदाब प्रभावित होता है। साधारण दशा में वाहिनी नियन्त्रक केन्द्र पर इसका प्रभाव संदमक (inhibitory) या निषेधात्मक होता है। इस साइनस के उत्तेजन द्वारा रक्तदाब में कमी और हृद्-निरोध (cardiac inhibition) होता है। इस साइनस के भीतर दाब में कमी होने पर धाड़िनकोन स्पन्दन बढ़ जाता है (यह स्पष्ट भी होता है)

वाहिनी-प्रसारक (vasodilators)

ये औषधियां धमनिकाओं को प्रसारित कर रक्तदाब कम करती हैं, और निम्नलिखित कार्य करती हैं:--

(१) वाहिनी-नियन्त्रक केन्द्र के अवसादक रूप में— जैसे ईथर, क्लोरोफार्म और अन्य सर्वाङ्गिक संज्ञाहर औषधियां।

(२) सांवेदनिक तन्त्रिकाकोषोंके अवसादक रूपमें- जैसे निकोटिन

(३) वाहिनियों के आरेखित पेशी के अवसादक रूप में- जैसे कार्बाकोल, पापावेरिन, थियोब्रोमिन, एसिटिल कोलिन, एमिल नाइट्राइट आदि।

(४) केशिकाओं को स्तम्भित करके (paralysing the capillaries)— हिस्टामिन या एन्टिमोनी के मात्राधिक्य द्वारा विषाक्त होने पर।

(५) वाहिनी नियन्त्रक नाडयन्तोंको अवसन्न करके जैसे एपोकोडीन

वाहिनी प्रसारक औषधियों का चिकित्सा में व्यवहार — ये औषधियां रक्तदाब कम करने के लिये, हृतशूल, दमा, आन्त्रशूल तथा अन्य आक्षेपिक रोगों में प्रयुक्त होती हैं।

वाहिनी संकोचक (vasoconstrictors)

ये औषधियां परिसरीय वाहिनियों पर क्रिया करके उनका संकोच उत्पन्न करती हैं और रक्तदाब बढ़ाती हैं। ये निम्नलिखित प्रकार से कार्य करती हैं.—

(१) धमनिकाओं को उत्तेजित करके।

(२) वाहिनी-पेशियों पर क्रिया द्वारा।

(३) केशिकाओं को संकुचित करके।

उदाहरण— एड्रिनलीन, एफेड्रीन, पिट्यूटरी एक्सट्रैक्ट, अर्गोटॉक्सिन, एम्फेटमीन आदि।

वाहिनी संकोचक औषधियों का चिकित्सात्मक प्रयोग —

(१) एड्रीनलीन(adrenalin) स्थानिक रूप में रक्तस्राव रोकने के लिये। संज्ञाहर औषधियों के साथ मिलाकर इन्जैक्शन के लिये। शक्तिपात, निपात, तथा हृद्पात आदि अवस्थाओं में हृद्वाहिनी उत्तेजक के रूप में। पूर्ण हृद्रोध में। आक्षेपिक दमा में।

* छटा अध्याय *

— केन्द्रीय तन्त्रिका-संस्थान —

(Central nervous system)

इसमें मस्तिष्क, अनुमस्तिष्क, सुषुम्नाशीर्षक, सुषुम्ना, सांवेदनिक तथा चालक तन्त्रिका तथा विभिन्न मगद (ganglia) आदि सम्मिलित हैं।

शरीरोष्मा नियन्त्रण:—

(Regulation of body heat and temperature)

ऊष्मोत्पत्ति (heat production) और ऊष्माविसर्जन (heat dessipation) में साम्य या समता बनाये रखकर प्रकृति शरीरोष्मा का नियन्त्रण करती है।

ऊष्मा-विसर्जन निम्नप्रकार से होता है:—

(१) त्वचा से— (क) विकिरण तथा संवहन द्वारा (by radiation and conduction)

(ख) प्रस्वेदन (sweating)या पसीना निकलने से

(२) फेफड़ों और त्वचा से आर्द्रता-उद्वाष्पन (evaporation of moisture)

(३) फेंफड़ों से निकलने वाले वायु (निःश्वास) के साथ।

(४) मलोत्सर्जन द्वारा जैसे मल और मूत्र-त्याग।

ऊष्मा उत्पादन (heat production)

शरीरकी सभी ऐच्छिक या अनैच्छिक क्रियाओं द्वारा ऊष्मा उत्पादन होता है। इस क्रिया के लिये हम लोगों द्वारा गृहीत आहार इन्धन का

(पृष्ठ ८२ के का शेषांश)

(२) एफेड्रिन— श्वौद्धियल दमा, काली खांसी, नशीली वस्तुओं द्वारा विषायन, माइस्थेनिया में विस, बच्चों में रात्रिकालीन अनैच्छिक मूत्रस्राव तथा सर्वाङ्गीय उत्तेजक के रूप में।

कार्य करता है। शरीर के प्रत्येक अङ्ग में विशेषतः हृदय, फेफड़ा, यकृत, ग्रन्थियों, वृक्क तथा पेशियोंमें निरन्तर, कुछ न कुछ गति या क्रिया होती रहती है, जिसके लिये ऊर्जा या शक्तिकी आवश्यकता होतीहै, जो ऊष्मा के रूप में हमारे आहार से मिलती है। आहार ग्रहण नहीं करने पर यह कार्य शरीरान्तरिक साधनों से होता है। शारीरिक चयापचय (metabolism) की क्रिया इसप्रकार नियन्त्रित होती है कि शारीरिक क्रियाओं और श्रम के लिये आवश्यक शक्ति मिलती रहे और शरीर का आन्तरिक ताप या ऊष्मा स्थिर बनी रहे। त्वचा की वाहिन्यायन (vascularity) स्वेद ग्रन्थियों की सक्रियता, फेफड़ों का संचालन (ventilation) और पेशियों तथा ग्रन्थियों की सभी क्रियायें शरीर की आवश्यकतानुसार ही होती हैं।

ऊष्मा उत्पादन और विसर्जन वृहत् मस्तिष्क के बेसल गैङ्गलिया (basal ganglia) में अवस्थित एक ऊष्मा-केन्द्र (heat center) द्वारा नियन्त्रित होता है। पॉन्स या मेडुला (pons or medulla oblongata) को आघात पहुंचने पर शरीरोष्मा में भी अत्यधिक परिवर्तन होता है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (Endocrine glands)का प्रभाव

एड्रिनल ग्रन्थि (adrenal gland) के उत्तेजन से एड्रिनलीन का स्रवण होता है, जो शारीरिक चयापचयको बढ़ाकर और वाहिनी संकोच द्वारा ऊष्मा विसर्जन कम करके शरीरोष्मा-नियन्त्रण की गूढ़ प्रक्रियाओं में सहायक होता है।

थायरायड ग्रन्थि (thyroid gland)- चयापचय क्रिया में वृद्धि करने के कारण तापोत्पादन में भी वृद्धि करता है।

शीतवातावरण या ठण्ड का प्रभावः— शीत या ठण्ड से एड्रिनल तथा थायरायड ग्रन्थियों का स्राव बढ़ जाता है, जिसके फल-स्वरूप चयापचय तथा आक्सीकरण (oxidation) क्रिया भी बढ़ जाती है। फलतः त्वगीय-धमनिकायें संकुचित हो जाती हैं, जिससे ताप विसर्जन कम हो जाता है।

ऊष्मा या ऊष्ण वातावरण का प्रभाव -

इससे त्वगीय वाहिनियां प्रसारित होजाती हैं, जिससे और अधिक

रुधिर से उष्मा-विकिरण या संवहन होने लगता है। प्रस्वेदन क्रिया और फेंफड़ों का संचालन भी बढ़ जाता है।

— ज्वर-हर औषधियां —

(antipyretics)

ये वे औषधियां होती हैं, जो ज्वरावस्था में ज्वर या ताप कम करती हैं। स्वस्थ अवस्था में, शरीरोष्मा पर इनका प्रभाव प्रायः नहीं होता। ज्वरावस्था में उष्मा-नियामक केन्द्र साधारण रूप से कार्य नहीं कर पाता। ये औषधियां त्वगीय-वाहिनियों को प्रसारित कर उष्मा विसर्जन बढ़ाती हैं।

ज्वरहर होने के अतिरिक्त ये वेदनाहर भी होती हैं। उदाहरण ये निम्नप्रकार से करती हैं —

(१) उष्मा-केन्द्र पर क्रिया द्वारा ताप कम करनेवाली औषधियां— जैसे फिनासेटिन, एमाइडो पाइरिन आदि।

(२) त्वगीय वाहिनियों को प्रसारित करके उष्मा-विकिरण में वृद्धि द्वारा कार्य करनेवाली औषधियां— जैसे स्पिरिट इथरिस नाइट्रोसि, आल्कोहल, नाइट्राइट्स आदि।

(३) प्रस्वेदक या पसीना निकालनेवाली औषधियां— एमोनियम एसिटेट और साइट्रेट, एसिटिल कोलिन आदि।

(४) प्रत्यक्ष रूप से त्वचा के सम्पर्क में आने से कार्य करनेवाली औषधियां— जैसे शीतल या सुखोष्ण जल से अंग पोंछना, शीतल सेक, शीतार्द्र सवेष्ट (cold wet pack)

संवेदना या संज्ञानुभूति की क्रियाविधि—

(physiology of sensation)

तन्त्रिका संस्थान या नर्वस सिस्टम (nervous system) द्वारा ही हम बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करते हैं, जो हमें विशेष संवेदनाओं या प्रतीतियों के रूप में प्राप्त होता है। इस क्रिया को संज्ञाग्रहण क्रिया भी कहते हैं। जो एक परावर्तित क्रिया होती है। त्वचा या अन्य ग्राही-अङ्गों और ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्तेजन द्वारा यह क्रिया उत्पन्न होती है, जहां से आवेदनिक या केन्द्रगामी (afferent) तन्त्रिकाओं द्वारा पश्चमूलीय

ग्रन्थियों (posterior root ganglion) में होता हुआ इसका संवहन सुषुम्ना में होता है, जहां यह एक तरह का उत्तेजन या प्रभाव उत्पन्न करता है, जो ऊर्जा के रूप में परिवर्तित हो जाता है। अब यह यहांसे या तो आज्ञावाही अङ्गों जैसे पेशियां, रक्तवाहिनियां या अवयवों के यथोचित कार्य करने के लिये संवहित होजाती है, या फिर सुषुम्ना से मस्तिष्क को जाने वाले सांवेदनिक मार्गों द्वारा मस्तिष्कीय संवेदी क्षेत्र को संवहित होती है। इसी कार्य के लिये विशेषरूप से बने हुए अवयवों या ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण होने पर इसे विशेष संज्ञा या ज्ञान कहते हैं, जैसे रूप ग्रहण (आंखों द्वारा), घ्राण (नाक द्वारा), श्रवण (कान द्वारा), रस या स्वाद (जीभ द्वारा) और स्पर्श। इनके अतिरिक्त कुछ दूसरे साधारण संज्ञा या संवेदन भी होते हैं जैसे क्षुधा, श्रम (थकावट), दुर्बलता और पेशी संवेदन।

पीड़ाहर या वेदनाशामक औषधियाँ:—
(analgesics)

ये पीड़ाहर और वेदना-नाशक औषधियां होती हैं और सिरदर्द, अधकपारी (migraine), स्नायुशूल, गृध्रसी (sciatica) और कष्टार्तव (dysmenorrhoea) आदि अवस्थाओं में इनका प्रयोग होता है। मुख्यतः ये दो श्रेणियों में विभाजित की जाती हैं:—

(१) केन्द्रीय (central)— यानी जो मस्तिष्क के सर्वाङ्गीय-संवेदनाहारी औषधियां (general anaesthetics) एण्टिपाइरिन, सैलिसिलेट्स, सिन्कोफेन, अफीम वर्ग, कोलटार वर्ग की औषधियां।

स्थानीय (local)— ये स्थानिक परिसरीय-तन्त्रिकाओं (peripheral nerves) पर कार्य करके पीड़ा या वेदना हरती हैं। ये बेहोश नहीं करतीं।

उदाहरण— कोकेन तथा इसकी व्युत्पत्तियां (derivatives) एथिलक्लोराइड का फुहारा (spray), फेनोल, मेन्थल या पिपरमिन्ट, बेलाडोना आदि।

सातवां अध्याय

—स्वायत्त तन्त्रिका-संस्थान—

(autonomic nervous system)

यह तन्त्रिका-संस्थान का एक स्वतन्त्र अंग है, जो वृहत-मस्तिष्क के प्रभाव से मुक्त होता है और स्वतन्त्ररूप से अनैच्छिक पेशियों तथा ग्रन्थियों की क्रियाओं का नियन्त्रण करता है। इसके तन्त्रिक सूत्र विभिन्न आशयों, ग्रन्थियों, रक्तवाहिनियों और अनैच्छिक पेशियों को जाते हैं। यह निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है.—

(१) सिम्पेथेटिक या सांवेदनिक संस्थान— (sympathetic system)

(२) परासिम्पेथेटिक या परासांवेदनिक संस्थान— (parasympathetic system)

इसका भी दो उपसमूह होता है:— (१) कपालिक (cranial) (२) त्रिकीय (sacral)

साधारणतः सिम्पेथेटिक और परासिम्पेथेटिक संस्थानों की एक दूसरे के प्रतिकूल क्रिया होती है। यह स्वायत्त संस्थान केन्द्रीय-तन्त्रिका संस्थान से स्वतन्त्र होते हुए भी उसके अनुकूल ही कार्य करता है। हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) में अवस्थित एक नियामक केन्द्र द्वारा इसका नियन्त्रण होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न ग्रन्थियों के स्रावों (जैसे एड्रीनलीन) का भी इस पर प्रभाव पड़ता है।

सांवेदनिक या सिम्पेथेटिक संस्थान—

(sympathetic system)

इसमें दो तन्त्रिका-सांवेदनिक सूत्र और उनकी शाखायें, तन्त्रिका-जाल और अनेक प्रगण्ड (ganglia) सम्मिलित हैं। ये रीढ़ के दोनों ओर समानान्तर रूप से उसके ऊपरी भाग से लेकर नीचे कमर तक रहती हैं। इनसे निकलकर और तन्त्रिका-प्रगन्थियों से होकर अनेक तन्त्रिका सूत्र अपने प्रदेश या भागों को जाते हैं। हृदय, फेफड़ों

और अन्य आशयों यथा अन्तराङ्गों के अतिरिक्त मस्तेदग्रन्थियों और रुधिर वाहिनियों को ये सूत्र जाते हैं। गण्डों से दो सूक्ष्म तन्त्रिका-सूत्र निकलकर इनको सौषुम्न-तन्त्रिकाओं (spinalnerves) से मिलाती हैं, जिन्हें धूसर और श्वेत रमी कम्यूनिकैन्टिस (rami communicantes) कहते हैं।

परासिम्पैथेटिकसिस्टेम Parasympathetic system

ये केन्द्रीय तन्त्रिका-संस्थान के कपालिक (cranial) और त्रिकीय (sacral) मूल से निकलती है। कपालिक समूह ३, ७, ६ और १०वीं कपालिक नाड़ियों द्वारा और त्रिकीय समूह २, ३, और चौथी त्रिकीय तन्त्रिकाओं द्वारा अपने गन्तव्य स्थान को जाता है।

कपालिक समूह आंख, नाक,मुख, गलकन्द, जीभ हृदय, वायुनली, ग्रासनली (oesophagus), आमाशय और क्षुद्रान्त्रों को जाती हैं और क्षरण-क्रिया (secretory mechanism) का नियमन करती हैं। त्रिकीय समूह वाहिनीप्रसारक, बाह्य जननेन्द्रिय, मूत्राशय, गुदनली, गुदद्वार आदि अवयवों को जाती हैं। सिम्पैथेटिक तथा परासिम्पैथेटिक दोनों तन्त्रिका-पद्धतियां यथास्थान पर प्रवर्धक (augmentory) या निरोधक (inhibitory) कार्य करती हैं और जिन अवयवों में दोनों तरह के तन्त्रिकासूत्र होते हैं, वहां साधारणतः उनकी क्रिया परस्पर विरोधी होती है। सूक्ष्म प्रक्रिया एक रासायनिक तत्व के क्षरण और सूक्ष्म रासायनिक क्रिया द्वारा होता है। सिम्पैथेटिक संस्थान में यह रासायनिक तत्व एड्रीनलीन (adrenaline) या इसी के सदृश-तत्व सिम्पैथिन (sympathin) और परासिम्पैथेटिक संस्थान में कोलिन (cholin) होता है।

केन्द्रीय तन्त्रिका संस्थान से निकलनेवाले सभी नाड़ीकन्द (neurones) कोलीनर्जिक (cholinergic) यानी कोलीन के माध्यम से कार्य करने वाले होते हैं। नाड़ी-गण्डों से परिसरीय अवयवों को जाने वाले तन्त्रिकासूत्रों में, परासिम्पैथेटिक वर्ग के सभी सूत्र और सिम्पैथेटिक वर्ग की स्वेद ग्रन्थियों को जाने वाले और पेशियों के वाहिनीप्रसारक कोलिनर्जिक या कोलिनसर्जक होते हैं। मस्तेदग्रन्थियों

के तन्त्रिकातन्त्रों के अतिरिक्त सिम्पैथेटिक सिस्टम के सभी तन्त्रिकातन्त्र एड्रिनलीन सर्जक (adrenalinergic) होते हैं।

सिम्पैथेटिक तथा परासिम्पैथेटिक संस्थान की कुछ आवश्यक या मुख्य क्रियायें:--

अवयव	सिम्पैथेटिक संस्थान	परासिम्पैथेटिक संस्थान
(१) आंख	नेत्रतारा का प्रसारण (dilatation of pupil)	नेत्रतारा का संकोच (contraction of pupil)
(२) श्वासनली	सूक्ष्म श्लैष्मिक कला और पेशियोंका शिथिलन (relaxation)। ग्रन्थियों पर कोई विशेष क्रिया नहीं	सूक्ष्म श्लैष्मिककला और पेशियों का संकोच
(३)परिपोषण संस्थान	छिद्र संकोचिनी पेशियों (sphincters)को छोड़ कर(जिनको यह संकुचित करता है) अन्य सम्पूर्ण संस्थान पर साधारणतः शिथिलनक्रिया होती है। रस-स्रवण (secretion) का निरोध करता है, किन्तु पैंक्रियास, सुप्रारेनल और पाइलोरिकग्रन्थियों (pancreas, suprarenals and pyloric gland के स्रावों को बढ़ाता है।	छिद्र संकोचिनी पेशियों का शिथिलन करता है। संकोचन तरङ्गगति(peristalysis) और ग्रन्थियों के रसस्रावको बढ़ाता है

अवयव	सिम्पैथेटिक संस्थान	परासिम्पैथेटिक संस्थान
(४) रक्तवाहिनियां	संकोचक	
(५) त्वचा और स्वेदग्रन्थियां		प्रस्वेदक (sudoric)
(६) हृदय	उद्धर्षक	निरोधक
(७) गर्भाशय	गर्भाशय के चालक तथा निरोधक दोनों ही तन्त्रिकासूत्र सिम्पेथेटिक संस्थान द्वारा ही प्राप्त होते हैं। अतएव क्रिया भी उसी के अनुसार होती है।	
(८) मूत्राशय	नली संकोचक पेशीका संकोचक किन्तु मूत्राशय के अन्य भागों का शिथिलक	नलीसंकोचक (sphincters) का शिथिलक किन्तु मूत्राशयके अन्य भागोंका संकोचक
(९) लालाग्रन्थियां (salivaryglands)	कुछ गाढ़ा रसस्त्रवण	वाहिनी प्रसारण और वर्धित रसस्त्रवण

सांवेदनिक संस्थान (Sympathetic system)

इस संस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां दो प्रकार की होतीहैं। प्रवर्धक और निरोधक; और ये दो तरह से क्रिया करती हैं:—

(१) सिम्पैथेटिक नाड्यन्तों (nerve endings)को उत्तेजित कर

(२) परासिम्पैथेटिक नाड्यन्तों को अवसन्न करके।

सूक्ष्म क्रियाविधि एक रासायनिकतत्व सिम्पैथिन (sympathin) के माध्यम से होती है।

एड्रिनलीन (Adrenalin)

पर्यायवाची नाम— सुप्रारेनिन, एपिनेफ्रिन।

प्राप्ति— अधिवृक्क (supra renal) ग्रन्थियों से। रासायनिक संश्लेषण द्वारा भी।

शास्त्रीयकल्प— (१) लाइकर, एड्रिनलीन, हाइड्रोक्लोराइड्स (liquor adrenalin hydrochloride)

(२) एड्रिनलीन इन्जेक्शन (injection adrenalin)

मात्रा- अधस्त्वगीय इन्जेक्शन द्वारा ५-८ मिनिम्स तक।

अवचारणमार्ग (routes of administration)— स्थानीय लेप, मौखिकमार्ग, अधस्त्वगीय, पेश्यभ्यन्तर, सिराभ्यन्तर और हृदयान्तरीय मार्गों में इसका प्रयोग होता है।

क्रिया— जिन अवयवों का तन्त्रिका-प्रदाय एड्रिनर्जिक (adrenergic) तन्त्रिकाओं से होता है, उन सभी पर एड्रिनलीन की क्रिया होती है। मुख्यत. चालक तथा निरोधक दोनों प्रकार के सांवेदनिक नाड्यन्तों (sympathetic nerve endings)को यह उत्तेजित करता है, केवल स्वेदग्रन्थियां ही इसका अपवाद हैं। नाड्यन्तों और उत्तकों के बीच अवस्थित सिनैप्स (synapse) नामक सन्धिस्थल पर इसकी क्रिया होती है। स्थानिक रूप से यह केशिकाओं और धमनिकाओं का संकोचन करता है और इस क्रिया द्वारा नेत्र में डाले जाने पर नेत्रकला की धारिलियों को संकुचित करता है। हृदय और रक्तवाहिनी संस्थान पर इसकी क्रिया द्रुत किन्तु अल्पकालीन होती है। धमनिका-संकोच द्वारा यह रक्तदाब बढ़ाता है। हृदय पेशी में अवस्थित सिम्पैथेटिक नाड्यन्तों की उत्तेजन क्रिया द्वारा हृदयगति में वर्धन, फिर रक्तदाब बढ़ जाने से हृदयगति मन्दन और अन्त में पुनः वृद्धि होती है। हृद्-धमनियों के प्रसारण द्वारा परिपोषण में उन्नति होती है। अन्तस्त्य प्रदेश के वाहिनी संकोच द्वारा शारीरिक रक्तदाब को बढ़ाता है। वायु नली प्रसारक नाड्यन्तों को उत्तेजित कर वायुनलीय पेशियों को शिथिल करता है और श्वास को गहरा करता है। आन्त्राभाशय पथ पर क्रिया द्वारा लालास्राव में वृद्धि और अन्तस्त्य तन्त्रिकाओं (splanchnic nerves) को उत्तेजित कर आन्त्रभित्तीय पेशियों का शिथिलन और नरकगति संकोचन को कम करता है, किन्तु छिद्र. संकोचक पेशियों को संकुचित करता है। यकृत् में ग्लाईकोजेन (glycogan) को ग्लूकोस में परिवर्तित कर देता है। गर्भाशय पर इसकी क्रिया प्रजाति (species) और अवस्था (जैसे गर्भावस्था) आदि पर निर्भर करती

है। पेशियों की संकोचन-शक्ति और उद्दीपकता में वृद्धि करता है और क्लान्ति तथा श्रान्ति से कुछ समय तक रक्षा करता है। आधारभूत चयापचय (basal metabolism) भी बढ़ाता है। रुधिर में इन्सुलिन (insulin) के प्रभाव का निराकरण करता है। मूत्रस्राव बढ़ाता है। त्वचा की वाहिनियोंको संकुचित और रोमेंको खड़ा करता है

चिकित्सा के लिये प्रयोग (therapeutic uses)

स्थानीय रूप से रक्तस्तम्भक (haemostatic) रूप में इसका प्रयोग होता है। स्थानीय संज्ञाहर औषधियों के साथ मिलाकर देने पर उनके प्रभाव को बढ़ाता है और शल्यक्रिया में वाहिनी संकोचन द्वारा रक्तस्राव कम करताहै। आकस्मिक दुर्घटना, स्तब्धता और पतनावस्थाओं में हृदय और रक्तपरिवहन संस्थान के उत्तेजक के रूप में इसका इञ्जैक्शन लगता है। पूर्ण हृद्रोध में भी इसका प्रयोग होता है। आक्षेपिक श्वास-कास या दमा में वायुनलीय आक्षेप निवारण के लिये इसका प्रयोग होता है। विविध औषधियों या सिरम के इञ्जेक्शन के बाद व्युत्साहिक प्रतिक्रिया के निवारण के लिये भी इसका व्यवहार होता है।

परासांवेदनिक या परासिम्पैथेटिक संस्थान—

(parasympathatic system).

इस संस्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां दो प्रकार की होती हैं (१) परासिम्पैथेटिक नाड्यन्तों को उत्तेजित करनेवाली और (२) उन्हें अवसन्न करनेवाली। इसके अतिरिक्त एक तीसरी श्रेणी उन औषधियों की है जो कोलिन इस्टरेस (choline isterase) का अकर्मीकरण (inactivation) करती हैं, जैसे निओस्टिगमिन (neostigmine) फाइसोस्टिगमिन (physostigmin)

एसिटिल्-कोलिन (Acetyl choline)

यह कोलिन का एसिटिल व्युत्पाद (acetyl derivative) होता है और चिकित्सा के लिये एसिटिल्कोलिन हाइड्रोक्लोराइड (acetyl choline hydrochloride) का व्यवहार होता है।

कोलिनसर्जक (cholinergic) तन्त्रिकाओं के उत्तेजन द्वारा बाह्य यन्त्र-पेशी सन्धिस्थल पर एसिटिलकोलिन् का क्षरण होता है, जो शीघ्र ही कोलिनइस्टरेस (cholinestarase) नामक प्रतिविकर द्वारा विघटित हो जाता है। यह विघटन क्रिया फाइसोस्टिग्मिन (physostigmin) द्वारा अवरुद्ध की जा सकती है, जिसके फलस्वरूप एसिटिल कोलिन की क्रिया को दीर्घित किया जा सकता है। एसिटिलकोलिन कोलिनसे प्रायः १ लाख गुणा अधिक सक्रिय और प्रभावशाली होता है।

एसिटिल कोलिन के गुण और कार्य—

(१) रक्तवाहिनियों को प्रसारित कर रक्तदाब घटाता है।

(२) मस्करीन जैसी क्रिया (muscarine like action) यानी परासिम्पैथेटिक प्रगण्डोत्तर तन्त्रिका-सूत्रों (postganglionic fibres of the parasympathetic) को उत्तेजितकर अश्रु ग्रन्थियों, लाला ग्रन्थियों (salivary gland) व स्वेदग्रन्थियों आदि का स्राव बढ़ाता है। रक्तदाब और अधिक कम करता है।

(३) निकोटिन जैसा प्रभाव— यानी स्वायत्त प्रगण्डको उत्तेजित कर बाद में स्तम्भित कर देता है।

(४) पेशियों की चालक तन्त्रिका को उत्तेजित करता है।

(५) अरेखित पेशियों जैसे आतों, आमाशय, मूत्राशय आदि की गतिमें वृद्धि करता है।

(६) हार्दिक-गति को कम करता है।

मानव शरीर में तत्काल नष्ट हो जाने के कारण इसका प्रभाव क्षणिक होता है, इसलिये चिकित्सा के लिये इसका प्रयोग नहीं होता।

— अवरोधक-द्रव्य —

(Blocking agents)

एट्रोपिन (Atropine)

प्राप्ति— यह सोलेनेसि (solanacae) वर्ग के पौधों जैसे एट्रोपा बेलाडोना (Atropa belladona) से प्राप्त होता है। एट्रोपिन सल्फेट एट्रोपिन नामक एल्कलाइड (alkaloid) का सल्फेट होता है।

मात्रा— १/२४० से १/६० ग्रेन
शास्त्रीय कल्प— (१) एट्रोपिन सल्फेट इञ्जैक्शन
(injectio atropine sulphate)
मात्रा— १/२४०-१/६० ग्रेन।

(२) मार्फिन एट एट्रोपिन सल्फेट इञ्जैक्शन। (एट्रोपिन सल्फेट १/१०० ग्रेन + मार्फिन १/६ ग्रेन)

(३) लेमेला एट्रोपिन (आंखों में डालने की टिकिया)

(४) एट्रोपिन मलहम (आंख का)

(५) अकुलेन्टम एट्रोपिन कम हाइड्रार्जाइराई अक्साइडी (oceulentum atropine cum Hydrargyri oxidi)

(६)टेब्ले एट्रोपिन सल्फाटिस(tabellac atropine sulphatis

गुण और कार्य— (१) तन्त्रिका-संस्थान को यह उत्तेजित करता है। श्वसन तथा वाहिनी-चालक केन्द्रों (respiratory and vasomotor centers) को भी यह उत्तेजित करता है। परिसरीय सांवेदनिक तन्त्रिका सूत्रों को अवसन्न करता है। परासिम्पैथेटिक नाड़ी-संस्थान का आंशिक रूप में यह प्रतिरोधी होता है। अधिक मात्रा में चित्तविभ्रम उत्पन्न करता है।

आन्त्र-आमाशय पथ— साधारण मात्रा में पाइलोरिक आक्षेप (pyloric spasm) और आंतों का आक्षेप निवारण करता है और संकोचन-तरङ्गगति को कम करके उसे नियमित करता है।

अनैच्छिक पेशियों— जैसे मूत्राशय, मूत्रनली, गर्भाशय, पित्तनली आदि की अनैच्छिक पेशियों का आक्षेप निवारण करता है और इन आशयों की शूल से रक्षा करता है।

नेत्र— नेत्रतारा (pupils)को फैलाता है और व्यवस्थापनक्रिया (accomodation) को स्तम्भित कर देता है। अन्तश्चक्षु-तान (intraocular tension) को बढ़ाता है।

हृदय और वाहिनी चालक संस्थान (heart and vasomotor center)— कम मात्रा में वेगस-केन्द्र (vagal center) को उत्तेजित कर हृदय की गति को कम करता है, किन्तु अधिक मात्रा में वेगस नाड्यन्तों (vagal nerve endings) को अवसन्न करने

हृदयगति बढ़ाता है। त्वचा की वाहिनियों को प्रसारित कर त्वचा को गरम और रूक्ष बनाता है।

श्वसन संस्थान— वायुनलियों का आक्षेप निवारण करता है। श्वसन केन्द्र को उत्तेजित करता है।

शरीरोष्मा— बढ़ाता है।

रसस्राव— दूध, मूत्र, और लसीका-स्रवण पर इसका प्रभाव नहीं होता। लाला (salivary) अग्न्याशयिक (pancreatic) आमाशयिक, श्लैष्मिक स्राव और प्रस्वेदन क्रिया को यह कम करता है

अवशोषण और उत्सर्जन (absorption and excretion) यह शीघ्र अवशोषित होता है और आंशिक रूप से यकृत में इसका आक्सीकरण (oxidation) होता है। १०-१२ घण्टे के अन्दर ही मूत्र द्वारा उत्सर्जित होता है।

चिकित्साके लिये निम्नलिखित अवस्थाओंमें इसका प्रयोग होता है

(१) नेत्रतारा को फैलाने और कुछ विशेष अवस्थाओं में नेत्र को आराम पहुंचाने (विश्राम देने) के लिये।

(२) पराक्षिम्पैथेटिक नन्त्रिकाओं की क्रियाओंके निराकरण के लिये

(३) विविध आक्षेप और शूलों से रक्षा या निराकरण के लिये— जैसे आन्त्रों, गुर्दे, पित्ताशय आदि के शूलों के लिये। जन्मजात पाइ-लोरिक-संकीर्णन (congenital pyloric stenosis) की चिकित्सा के लिये।

(४) आमाशय-व्रण (peptic ulcer) होने पर आक्षेप और रसस्राव कम करने के लिये।

(५) अत्यधिक प्रस्वेदन को कम करने के लिये।

(६) दमा, ब्राङ्काइटिस, कालीखांसी आदि श्वसनपथ की आक्षेपिक अवस्थाओं की चिकित्सा के लिये।

(७) अनेक विषों व विषोपविषों का प्रतिकार या निराकरण करने के लिये— जैसे अफीम या मॉर्फिन, फाइसोस्टिग्मिन, पाइलोकार्पिन

(८) कुछ विशेष नैदानिक परीक्षाओं के लिये, जैसे हाइपवायड रोग के निदान के लिये 'मेरी-परीक्षा' (Marry's test)

आठवाँ अध्याय

— रासायनिक चिकित्सा —

(chemotherapy)

रसायनिक द्रव्यों द्वारा रोगों की चिकित्सा को रासायनी या रसायन चिकित्सा chemotherapy or chemotherapeutics कहते हैं, जैसे क्वीनिन (quinine) द्वारा मलेरिया या आर्सेनिक (arsenic) द्वारा सिफलिस (syphlis) की चिकित्सा। औषध-प्रभाव विज्ञान (pharmacology) का सम्बन्ध औषधियों की स्वाभाविक या प्राकृतिक क्रियाओं से ही होता है, जो रोगों के लक्षणों का निवारण करता है। किन्तु रोगाणुओं और परजीवी कीटों द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों की चिकित्सा में व्यवहृत होने वाली औषधियाँ 'अद्भुत औषध' (specific drug) के रूप में कार्य करती है।

इस प्रकार के रोगाणुसंक्रमण की विशिष्ट औषधियों या रसायनों द्वारा चिकित्सा रासायनी चिकित्सा या कीमोथिरेपी कहलाता है। इन द्रव्यों का व्यवहार सबसे पहिले अर्लिक (Ehrlich) द्वारा किया गया। ऐसे औषधियों और द्रव्यों की खोज होने लगी, जो रोगी को बिना किसी प्रकार का नुकसान पहुंचाये रोगाणुओं को मार दें, यानी जिनमें रोगाणु हनन या नाशन गुण अधिकतम और विषाक्तता न्यूनतम हो और यही रासायनी चिकित्सा का मूल उद्देश्य होता है। इसे हम निम्नलिखित सूत्र के रूप में व्यक्त कर सकते हैं:—

औषधि की अधिकतम सह्य मात्रा या रोगमुक्त करनेवाली अल्पतम मात्रा = उस औषध की क्षमता।

संश्लेषण द्वारा नित नयी नयी औषधियां तैयार होने के कारण इन रोगों की रासायनी चिकित्सा भी समय के साथ ही बदलती रहती है

निम्नलिखित मुख्य विभागों में विभाजित औषधियां

(१) मलेरिया की चिकित्सा के लिये व्यवहृत औषधियां—

क्वीनिन और सिन्कोनावर्ग की अन्य औषधियां, कैमोक्वीन, क्लोरोक्वीन, पैल्यूड्रीन, मेपाक्रिन, पामाक्वीन आदि।

(२) कालाजार के लिये—

एन्टीमोनी कल्प या समास, निओस्टम, सोल्यूस्टिबोसन आदि।

(३) सिफलिस या फिरङ्ग रोग के लिये—

पेनिसिलिन, बिस्मथ, आर्सेनिक, आयोडाइड आदि।

(४) एमेबिक डिसेन्ट्री के लिये—

एमेटिन और आइपेकाकुआना वर्ग की औषधियां, कार्बनिक आर्सेनिक समास, कुर्ची और इसके अल्केलायड, आक्सी या हाइड्रोक्सी-क्विनोलिन समास जैसे एन्टेरोविओफॉर्म, एन्टेरोभियाफॉर्म।

(५) जैवाणिवक या शाकाणिक रोगाणुसंक्रमण में व्यवहार होने वाली औषधियां—

(क) सल्फोनामाइड वर्ग।

(ख) एन्टिबियोटिक्स वर्ग— जैसे पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेरामाइसिन, साइट्रिसिलिन, औरियोमाइसिन, क्लोरोमाइसेटिन आदि

(६) यक्ष्मा या तपेदिक की चिकित्सा के लिये—

स्ट्रेप्टोमाइसिन, आइसोनिकोटिनिक एसिड समास, पाराएमाइनो सेलिसिलिक एसिड आदि।

(७) कुष्ठ रोग की चिकित्सा के लिये—

सल्फोन्स, चालमूगा और हिड्नोकार्पस का तेल।

मलेरिया (Malaria)

मलेरिया रोग के कारण— मलेरिया रोग मच्छरों के डसने और रक्त में मलेरिया के रोगाणुओं के प्रवेश करने पर उत्पन्न होता है।

मलेरिया के रोगाणु प्लाज्मोडियम (plasmodium) जाति के स्पोरोजोआ (sporozoa) वर्ग के होते हैं। इनके चार उपवर्ग होते हैं प्लाज्मोडियम वाइवैक्स (P. vivax) या असांघातिक मलेरियाणु, प. मलेरी (P. malariae) या चातुर्थिक मलेरियाणु, प ओवेल (P. ovale) या तृतीयक ज्वर के मलेरियाणु और प फैल्सिफारम (P. falcifarum)।

मच्छर के डंक द्वारा शरीर में प्रवेश पाने पर शीघ्र ही रुधिर से जालिकान्तपट संस्थान (reticulo-endothelial system) के उत्तकों में पहुंच जाते हैं, जहां इनका लोहिताणिवतर या लाल रक्तकण बहिरस्थ विकास (extra-erythrocytic developmnet) होता है इस अवस्था में प्रकटरूप से रोगी में मलेरिया का कोई लक्षण नहीं होता। इसके बाद रोगाणु फिर रुधिरमें आकर लोहिताणुओं में प्रवेश कर जाते हैं, जहां इनका अलैङ्गिक विकास (asexual development) होता है। कुछ समय बाद विकसित रोगाणु (schizonts खंड गुणक) युत लोहिताणु फट जाता है और अनेकानेक खण्डज (Merozoites) रुधिर से उन्मुक्त हो जाते हैं। इस अवस्थामें कम्प के साथ जोरों का बुखार हो आता है।

पहले मलेरिया रोग की चिकित्सा के लिये आधारभूत औषध के रूप में क्विनीन और सिन्कोना वर्ग की औषधियों का व्यवहार होता था, किन्तु आजकल और अधिक प्रभावकर सुरक्षित और निरापद औषधियों के उपलब्ध होने से इनका प्रयोग कम हो गया है।

आजकल इसकी चिकित्सा के लिये —

निम्नलिखित औषधियों का व्यवहार होता है:— कैमोक्वीन, क्लोरोक्वीन, निवाक्वीन, पैल्यूड्रिन, मेपाक्रिन हाइड्रोक्लोराइड (एटेब्रिन) पामाक्वीन, पेन्टाक्वीन, क्विनीन व सिन्कोनावर्गकी औषधियां

कतिपय विशेष कल्प —

(१) सिन्कोना फेब्रिफ्यूज (Cinchona febrifuse)
मात्रा— १-१० ग्रेन।

(२) टोटाक्वीन (totaquin) मात्रा— ५-१० ग्रेन।

(३) क्विनीन हाइड्रोक्लोराइड मात्रा— ५-१० ग्रेन ।

(४) क्विनीन-बाई-हाइड्रोक्लोराइड मात्रा—
मौखिक मार्ग से— ५-१० ग्रेन । इञ्जैकशन से— ५-१० ग्रेन ।

(५) क्विनीन सल्फेट— मात्रा— ५-१० ग्रेन ।

(६) क्विनीन एट् एथिल कार्बोनेट (quinine at aethyles carbonas) यूक्विनीन या स्वाद रहित क्विनीन । मात्रा— ५-१० ग्रेन ।

(७) क्विनीन हाइड्रोब्रोमाइड मात्रा— १ १० ग्रेन ।

(१) क्विनीन (Quinine)

मलेरिया रोग की चिकित्सा के लिये साधारणत. मौखिक मार्ग से क्विनीन का व्यवहार होता है । बेहोश होने पर या अत्यधिक वमन होने पर पेश्यभ्यन्तर या सिराभ्यन्तर इञ्जैक्शन द्वारा इसका प्रयोग होता है । क्विनीन खाली पेट में नहीं देना चाहिये । साधारणतः दिन भर में तीन बार भोजन के बाद ५-७ रोज तक चिकित्सा की जाती है इसके बाद कम मात्रामें लोहा और आर्सेनिकके साथ बलवर्धक औषध के रूप में इसका सेवन किया जाता है । गर्भावस्था में क्विनीन के बदले अन्य औषधियों द्वारा मलेरिया की चिकित्सा करनी चाहिये ।

(२) मेपाक्रिन, हाइड्रोक्लोराइड, एटेब्रिन, क्विनाक्रिन आदि— (mepacrine, Hydrochloride, Atebrin, Quinacrine)

ये बहुत प्रभावकारी औषध होतीहै और प्रत्येक प्रकारके अलिङ्गीय मलेरियाणुओं का नाश करती है ।

मात्रा— वयस्कों के लिये साधारण मात्रा— १ १/२ ग्रेन की टिकिया— १ टिकिया दिन भर में तीन बार भोजन के बाद ५ दिनों तक देना चाहिये । दूसरी विधि—

दो रोज तक भोजन के बाद दो टिकियां दिन मे तीन बार, इसके बाद ५ दिनों तक एक टिकिया दिन भर में तीन बार ।

(३) पैल्युड्रिन (Paludrine)

मात्रा— १ १/२— ३ ग्रेन ।

यह एक संश्लिष्ट समास होताहै । मुखसे खाने पर शीघ्र अवशोषित होकर रुधिर में अधिकतम मात्रा ३ ४ घण्टों के अन्दर ही पहुंच जाती

है। यह सांघातिक मलेरिया की दोनों अवस्थाओं में कारगर होता है और इसलिये इसका विशेष महत्व होता है।

रोग चिकित्सा के लिये ०.१ ग्राम की तीन टिकियां या ०.३ ग्राम की एक टिकिया प्रतिदिन खाई जाती है। इससे रोग आराम करने के लिये यह मात्रा ७-८ रोज तक दी जाती है। मलेरिया से बचाव या रोकथाम के लिये प्रतिसप्ताह १ गोली (०.३ ग्राम) काफी होती है, किन्तु अधिक मलेरिया वाले स्थान में सप्ताह में दो बार खाना अधिक सुरक्षित होता है।

(४) क्लोरोक्वीन (डाईफास्फेट)

यह मेपाक्रिन की अपेक्षा तीन गुणा अधिक कारगर होती है और खाने के बाद लगभग एक सप्ताह तक रुधिर में न्यूनाधिक मात्रा में बनी रहती है।

मात्रा— एक टिकिया = ०.३ ग्राम।

पहली खुराक— ०.६ ग्राम (१०ग्रेन), ६-८ घण्टा बाद।

दूसरी खुराक—०.३ ग्राम। इसके बाद प्रतिदिन ०.३ ग्राम प्रतिदिन दो या तीन रोज तक।

मलेरिया से बचाव के लिये— १ टिकिया प्रति सप्ताह।

—कालाजार और उसकी चिकित्सा-औषधियां—

(kala-a-zar and drugs used for its treatment)

कालाजार के (kala-a-zar) हेतु या कारण—

यह रोग लिशमानियां डोनोवेनाई (leishmania Donovani) नामक रोगाणु द्वारा संक्रमण होने पर होता है। यह महामारक (epidemic) या स्थानिकमारी (endemic) रूप में गर्म देशों में पाया जाता है। अनियमित ज्वर (जीर्ण या उग्र), यकृत् और प्लीहा की विवृद्धि (enlargement of liver and spleen), क्रमवर्द्धित क्षीणता, रक्ताल्पता, और त्वचा का अतिरञ्जन (hyperpigmentation) इस रोगके विशेष लक्षण हैं। यह रोग सम्भवतः बालमक्खिका (sandfly) के माध्यम से और निम्नलिखित कारकों द्वारा फैलता है

(१) कालाजारके रोगीको मानवीय संग्रहागारके रूपमें काम करते हैं

(२) रोगाणुके प्रगुणन और वालुमक्षिका के लिये उपयुक्त जलवायु और अनुकूल वातावरण।

(३) रोगी की रोगक्षमता या रोग प्रतिबन्धक क्षमता की कमी।

(४) उस स्थान में रुधिर चूसनेवाले कीटाणुओं (जैसे वालुमक्षिका) की विद्यमानता।

इस रोग का विशिष्ट-निदान रक्तपरीक्षा द्वारा होता है। इन परीक्षाओंमें नेपियरसाहब का एल्डिहाइड परीक्षा (Napiers aldchyde test or formol get test) चोप्रा का एन्टिमोनी परीक्षा (Chopra's Antimony test) और ब्रह्मचारी का ग्लोब्युलिन अवक्षेपण परीक्षा (Brahmacharis globlin precipitation test) अधिक विश्वसनीय है। अशक्य या अचूक निदान रक्त-पवर्धन (blood culture) द्वारा लिशमैन बॉडिज (Leishman bodies) के प्रदर्शन द्वारा होता है।

कालाजार चिकित्सा में प्रयुक्त होनेवाली औषधियां—

इस रोग की चिकित्सा के लिये एन्टिमोनी के कल्प और एरोमेटिक डाइएमीडिन्स(aromatic diamidines) प्रयुक्त होतेहैं। एन्टिमोनी के कल्प दो प्रकार के होते हैं; त्रिसंयुज (trivelent) या पंच संयुज (pentavelent) त्रिसंयुज कल्प जैसे पोटैशियम या सोडियम एन्टिमोनिल टार्ट्रेट (k or Na Antimonyl tartrate) पहले व्यवहार किये जाते थे, किन्तु पंच संयुज समास अधिक सक्रिय, सुरक्षित और सुविधाजनक होने के कारण आजकल अधिक व्यवहृत होते हैं। पंचसंयुज कल्पों में निम्नलिखित समास अधिक प्रयुक्त होते हैं, जिनमें यूरियास्टिबमीन सर्वाधिक प्रचलित है—

(१) यूरियास्टिबमीन (urea stibamine)

मात्रा— ०.०५, ०.१, ०.१५, ०.२ ग्राम की क्रमिक मात्रा में प्रति दूसरे दिन सिराभ्यन्तर इञ्जैक्शन द्वारा दिया जाता है। साधारण वयस्क के लिये सम्पूर्ण मात्रा— प्राय. २.५ ग्राम।

(२) नियोस्टिबीन (Neostibene) मांस में इञ्जैक्शन द्वारा ०.०५, ०.१, ०.१५ और ०.२ ग्राम की क्रमिक मात्रा में।

(३) नियोस्टिबोसन (Neostibosan)

मात्रा— ०.०५, ०.१, ०.२, ०.३ ग्राम की क्रमिक मात्राओं में मांस या नस में इञ्जैक्शन द्वारा। नस के लिये ५% और मांस के लिये २५% के घोलका इञ्जैक्शन लगता है, जो प्रति दूसरे दिन दिये जाते हैं

(४) सोल्यूस्टिडोसन (solustidosan)

०.०३ ग्राम प्रति सी.सी. की शक्तिमे एम्प्युल्स में बन्द यह बिकता है। यद्यपि यह नस में भी दिया जा सकता है, फिर भी साधारणत: यह मांस में इञ्जैक्शन द्वारा दिया जाता है।

(५) स्टिबेटिन (stibatin)— यह २० मिलिग्राम प्रति सी सी और १०० मिलिग्राम प्रति सी.सी. के संकेन्द्रण में मिलता है। यद्यपि यह नस में भी दिया जा सकता है, फिर भी अधिकतर मांस में इञ्जैक्शन द्वारा ही दिया जाता है।

(६) एरोमैटिक डाइएमिडिन्स (aromatic diamidins)— ये उन अवस्थाओं में व्यवहार किये जाते हैं, जहां किसी कारणवश एन्टिमोनी का प्रयोग वर्जित हो या उससे फायदा नहीं होता हो।

(७) पेन्टामिडिन आईसेथियोनेट (pentamidine isothionate)— नस में १% और मांस में १०% विलयन इञ्जैक्शन द्वारा व्यवहार किया जाता है। इञ्जैक्शन रोज या एकदिन बाद देकर दिये जाते हैं। १० इञ्जैक्शन का एक कोर्स पूरा हो जाने पर १० दिन का अन्तर देकर फिर १० इञ्जैक्शन लगाये जाते हैं।

(८) हाइड्रोक्सि-स्टिल्बमिडिन आइसेथिनेट (Hydroxy-stilbamidine isethionate)

मांस में देने के लिये १०% विलयन व्यवहृत होता है। नस में देने के लिये ५ प्रतिशत ग्लूकोस के २५ सी. सी. में मिलाकर तनुकृत (diluted) कर देते हैं। व्यवहार का तरीका (छह) के समान ही है

यक्ष्मा-रोगकी चिकित्सामें व्यवहृत होनेवाली औषधें

(tuberculosis and drugs used for its treatment)—

यह एक संसर्गज रोग है, जिसका मनुष्यों में संचार इस रोग से ग्रसित-व्यक्ति के संसर्ग में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आने से होता है। यह एक सार्वङ्गीय रोग है, यद्यपि शरीर के किसी अवयव या

अङ्ग विशेष में स्थानीय रूप से ही अधिकतर अंकन्त होता है। शरीर में लसीका, रुधिर और खखार (sputum) के माध्यम से इसका संचार होता है।

कारण या हेतु— यक्ष्मा रोगाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाले रोग को जिसमें संक्रमित अङ्ग या ऊत्तकों में सूक्ष्म गुटिकायें (small tubercles) उत्पन्न होजाती हैं, यक्ष्मा, तपेदिक या ट्यूबरक्यूलोसिस कहते हैं। यह रोगाणुसंक्रमण मुख्यतः तीन मार्गों से होता है—

(१) रोगी के खांसने, छींकने और जोर से बोलने पर बिन्दूत्क्षेप (droplet) द्वारा निकलने वाले द्रव्यों के अन्तःश्वसन द्वारा (३-४ फीट के दायरे में)

(२) ट्यूबर्कल बेसिलाई द्वारा दूषित, दूध, जल या भोजन ग्रहण करने से।

(३)त्वचा या श्लैष्मिककला में अन्तःक्रामण (inoculacion) द्वारा।

यद्यपि प्रायः हम सभी व्यक्तियों के शरीर में किसी न किसी रूप से यक्ष्मारोगाणु प्रवेश पा जाते हैं, किन्तु फिर भी ये सभी व्यक्ति रोग ग्रसित नहीं हो जाते। उनकी शारीरिक रोगप्रतिबन्धक शक्ति इस संक्रमण पर विजय प्राप्त कर लेती है। रोग ग्रस्त होना निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है—

(१) यक्ष्मारोगाणुओं की प्रचण्डता या विषाक्तता (Virulance)

(२) यक्ष्मा रोगाणुओं की मात्रा।

(३) संक्रमण की आधिक्यता (frequency) या आवृत्ति।

(४) संक्रमण मार्ग।

(५) रोगी या व्यक्ति विशेषकी रोगग्रस्यता या रोगप्रवृत्ति (susceptibility)

(६) रोग प्रसार के उपयुक्त वातावरण जैसे मन्द प्रकाश रहित घरों में रहना, हीन और अपोष्टिक आहारग्रहण, गरीबी के कारण अत्यधिक भीड़भाड़ में या रोगी के साथ एक ही कमरे में रहना।

यक्ष्मा-चिकित्सा में प्रयुक्त होनेवाली औषधियां—

यद्यपि इस रोग की चिकित्सा के लिये बहुत पहले से तरह-तरह

की औषधियों का व्यवहार होता रहा है फिर भी आजकल इसके लिये मुख्यतः तीन औषधियां व्यवहृत होती हैं:—

(१) स्ट्रेप्टोमाइसिन, डाइहाईड्रोस्ट्रेप्टोमाइसिन आदि
(Streptomycin, Dihydrostreptomycin etc)

(२) पाराएमाइनो सैलिसिलिक एसिड या इसके समास
(Paraemino salicylic acid or its derivatives)

(३) आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्राजाइड या इसके अन्य समास (Isonicotinic acid hydrazide or its derivatives)

स्ट्रेप्टोमाइसीन का वर्णन जीवाणु द्वेषी (antibiotics) औषधियों के साथ आगे किया जायगा।

पारा एमाइनो सैलिसिलिक एसिड या पी. ए. एस.—
(para amino salicylic acid or P. A. S.)

अकेले व्यवहार किये जाने पर यह उतना प्रभावकारी नहीं होता, जितना स्ट्रेप्टोमाइसिन के साथ दिये जाने पर। इस संयोग या सम्मिलित प्रयोग (combind use) से रोगाणुओं को स्ट्रेप्टोमाइसिन सह्य (streptomycin resistant) बनने में अधिक विलम्ब होता है, यानी और अधिक समय तक ये औषधियां कारगर बनी रहती हैं। साधारणतः सोडियम या कैल्शियम पास (P. A. S.) व्यवहृत होता है और मौखिक-मार्ग से दिया जाता है। कुछ विशेष अवस्थाओं में इसका इन्जैक्शन भी दिया जाता है।

मात्रा— १२-१५ ग्राम प्रतिदिन तीन या चार मात्राओंमें विभाजित करके भोजन के बाद दिया जाता है। (प्रत्येक टिकिया ०.५ ग्राम की होती है) वमनेच्छा (nausea) या अतिसार उत्पन्न होने पर एक दो रोज के लिये मात्रा कम या दवा बन्द कर दी जा सकती है। रुधिर में इसका अपेक्षित संकेन्द्रण ५-१० मिलिग्राम प्रति सी. सी. होना चाहिये।

आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्राजाइड—

(isonicotinic acid hydrazide)

यद्यपि अकेली भी यक्ष्मा रोगाणुओं के प्रति यह एक बहुत अच्छी औषध है फिर भी पी. ए एस. (P. A. S) या स्ट्रेप्टोमाइसिन के साथ दिये जाने पर और अधिक कारगर होती है। इसके दीर्घकालीन व्यवहार के बाद भी कोई सांघातिक या गम्भीर कुप्रभाव नहीं पड़ता। अकेले व्यवहृत होने पर शीघ्र ही औषध-सह्य (drug resistant) जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं।

मात्रा और अवधारण— प्रति किलोग्राम शरीरभार के लिये २-५ मिलिग्राम के अनुपात में इसकी साधारण मात्रा होती है। एक साधारण वयस्क के लिये ५० मिलिग्राम की टिकिया— ३-४ टिकिया प्रति दिन मौखिक मार्ग से दी जाती हैं।

निम्नलिखित सम्मिलित योग अधिकतम प्रभावकारी होता है:—

(१) प्रतिदिन या सप्ताह में दो बार १ ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन का इञ्जैक्शन + २०० मिलिग्राम आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्राजाइड (आइसीनेक्स या आइसोनियाजिड) प्रतिदिन मौखिक मार्ग से।

(२) पी. ए एस. (P.A.S.) + आइसोनियाजिड (isoniazid) का संयोग भी मौखिक मार्ग से दिये जाने पर काफी प्रभावकारी होता है विशेषतः उन अवस्थाओं में, जबकि किसी कारणवश स्ट्रेप्टोमाइसिन का इञ्जैक्शन लगवाना सम्भव नहीं होता।

❀ नौवां अध्याय ❀

बैक्टेरियल-संक्रमण की चिकित्सा में प्रयुक्त औषधियां

(bacterial infections and drugs used for their treatment)

सभी संक्रामक रोग रोग-गम्य (susceptible) व्यक्तियों पर संक्रामक जीवाणुओं के आक्रमण द्वारा उत्पन्न होते हैं और संक्रमण का वहन जल, वायु; कीटों, आहार या मिट्टी के माध्यम से होता है। बहुत से संक्रामक रोगों का कारण बैक्टेरिया या जैवाणिवक संक्रमण होता है। ये बैक्टेरिया (bacteria) या शाइजोमाइसेटिस (sehizomycetes) वानस्पतिक जगत् के सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु होते हैं। ये भिन्न-भिन्न रूप और आकार-प्रकार के होते हैं। यद्यपि ये सभी सूक्ष्माणु और ०.३ से ४० माइक्रन व्यास या लम्बाई तक के होते हैं। कुछ चल (motile) और कुछ अचल (non-motile) होते हैं, कुछ गोलाकार तो कुछ लम्बाकार या दण्डाकार (rod-shaped) होते हैं। संवर्धन गुणों (culture characteristics) के अनुसार इनका वर्गीकरण किण्वक(zymogenic or fermentative), या उत्प्रेरक, गैस (वाति) जनक gas producing or aerogenic), पूतिजनक (putrifactive or saprogenic) रोगजनक (pathogenic) या विषजनक (toxicogenic) आदि श्रेणियों में किया जाता है। शरीर में प्रवेश करने के बाद बैक्टेरिया अपने विशिष्ट गुणों के अनुसार बहिर्विष (exotoxin) जैसे डिफ्थीरिया, प्रवाहिका या धनुष्टंकार के रोगाणु या अन्तर्विष (endotoxin) जैसे बैसिलस टाइफोसस या टायफाइड रोग के जीवाणु, उत्पन्न करते हैं।

रोगाणु मुख्यतः तीन मार्गों से शरीर में प्रवेश करते हैं —

(१) श्वास लिये जानेवाले वायु (अन्तःश्वास) के साथ— जैसे गन्दे, अन्धकारपूर्ण मकानों में भीड़भाड़ के साथ रहने से।

(२) दूषित आहार के साथ जैसे प्रवाहिका या टायफायड के रोगाणु

(३) त्वचा में अन्तःक्षेप (inocculation) द्वारा, जैसे धनुष्टंकार (tetanus), जलातंक (Rabies) आदि।

बैक्टेरियल रोगोंकी चिकित्साके लिये प्रयुक्त होनेवाली औषधें

सल्फोनामाइडस और कीटाणुध्नी या एन्टिबियोटिक वर्ग (antibiotics) की औषधियों के अन्वेषण के पूर्व बैक्टेरियल रोगाणुसंक्रमण की चिकित्सा बड़ी मुश्किल थी, किन्तु अब यह काम अपेक्षाकृत सरल हो गया है।

सल्फोनामाइड्सवर्ग (sulphonamides) की औषधियाँ

इस वर्ग के औषधियों में सर्वप्रथम १९३५ ईस्वी में डोमेग (Domagk) द्वारा "प्रोन्टोसिल" नामके सल्फोनामाइड का आविष्कार हुआ। इसका कार्य या फल देखने के बाद शीघ्र ही इस वर्ग की अनेकानेक औषधियां संश्लिष्ट हुईं।

सल्फोनामाइड्स का क्रियाविधि— इस विषय में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं, जिनमें सबसे अधिक प्रचलित निम्नलिखित हैं:—

(१) सल्फनिलमाइड या प्रोन्टोसिल एल्बम—
(sulphonamide or prontosil album)

सल्फोनामाइडवर्ग की अन्य सभी औषधियों के संश्लेषण के लिये यह आधार या मूल-द्रव्य होता है। इसके व्युत्पादित सन्तान दो प्रकार के होते हैं—

(क) जिनके एमाइनोवर्ग से हाइड्रोजन का एक अणु दूसरे तत्त्व द्वारा प्रतिस्थापित (substituted) कर दिया गया हो। इस वर्ग में प्रोन्टोसिल, प्रोसेप्टसिन, और न्यूप्रोप्टसिन जैसे सल्फोनामाइडस होते हैं।

(ख) दूसरावर्ग उन सल्फोनामाइड्स का है, जिनमें एमाइडवर्ग का हाइड्रोजन अणु प्रतिस्थापित हुआ हो। इस वर्गमें सल्फापाइरिडिन सल्फाथियाजोल, सल्फागुवानिडिन, सल्फाडाइजिन आदि हैं। पहली श्रेणीके सल्फोनामाइडस सम्भवतः शरीरके ऊतकोंमें सल्फनिलामाइड में परिवर्तित होकर अपनी क्रिया करते हैं और इनकी क्रिया स्वतन्त्र एमाइनोवर्ग (NH2 group) पर निर्भर करती है।

दूसरी श्रेणी के सल्फोनमाइडस अपने रूप में कार्य करते हैं, उनका रूप परिवर्तन नहीं होता। पहले वर्ग के सल्फोनमाइडों से ये अधिक

सक्रिय और प्रभावकारी होते हैं। ये औषधियां बैक्टेरिया पर जीवाणु रोधक (bacteriostatic) या जीवाणुघातक (bacteriocidal) रूप में कार्य करती हैं। रोगाणुओं की संवर्धनावस्था में ये अधिक कारगर होते हैं। शायद ये दो तरह से कार्य करते हैं। प्रथम तो कुछ सल्फोनमाइडस बैक्टेरिया के कायतल (body surface) में सट जाते हैं। दूसरी सम्भावना यह है कि बैक्टेरिया के किण्वसंहति (Enzyme system) को किसीतरह से ये अवरुद्ध करदेते हैं। इस विषय में ज्ञातव्य है कि बैक्टेरिया के चयापचय के लिये पाराएमाइनो बेन्जोइक एसिड आवश्यक होता है। इसकी और सल्फोनमाइडस की संरचना प्रायः एकसी होती है। बैक्टेरिया के चयापचय में सल्फोन- माइडस पाराएमाइनोएसिड को प्रतिस्थापित करदेते हैं, जिससे बैक्टे- रिया भूल से उसे ही ग्रहण करलेते हैं, जिससे उनके परिपोषणक्रम में व्यवधान उत्पन्न होने के कारण वे क्षीण और संख्या में कम हो जाते हैं; जिससे आसानी से वे शरीर के भक्षककोषों (Phagocytes) का शिकार हो जाते हैं, जो इन्हें निगल जाते हैं। पीब और प्रोटीन- विघ- टन के द्रव्यों की उपस्थिति से सल्फोनामाइड वर्ग की औषधियों की क्रिया में विघ्न होता है।

अवशोषण, व्यापन और उत्सर्जन —
(absorption, distribution and excretion)

स्थानिक रूप से कार्य करने वाले सल्फोनामाइड्स (जैसे सल्फा- ग्वानिडिन, सक्सिनिल और थैलिल सल्फाथियाजोल आदि) को छोड़ कर मौखिकमार्ग से दिये जाने पर अन्य सल्फोनामाइड औषधियां सुगमतापूर्वक शीघ्र ही अवशोषित होती हैं, और यह गुण मुख्यतः उनकी विलेयता पर निर्भर करता है, जो क्रमिक रूप से इसप्रकार है—

सल्फनिलामाइड, सल्फाथियाजोल, सल्फामेराजीन, सल्फाडायजिन और सल्फापाइरिडिन। सक्सिनिल और थैलिल सल्फाथियाजोल का केवल ५ प्रतिशत अवशोषण होता है। यह क्रिया विशेष रूप से क्षारों की उपस्थिति में और खाली पेट से अधिक सुगमतापूर्वक होती है। अवशोषण क्रिया मुख्यतः क्षुद्रान्त्रों में और थोड़ी-थोड़ी आमाशय और

बृहदन्त्रों से होती है। अवशोषण के बाद शरीरद्रवों और रक्तकों में व्यापन या प्रसारण विभिन्न औषधियों द्वारा विभिन्न सान्द्रण और अनुपात में होता है।

घुलनशील औषधियां जैसे सल्फोनामाइड्स के सोडियम समास शीघ्र अवशोषित और उत्सर्जित होते हैं। सफल चिकित्सा के लिये रुधिर में इनका सान्द्रण प्रायः ४-१५ मिलिग्राम प्रति १०० सी. सी. होना और इसपर स्थिररहना आवश्यक होताहै, इसलिये ये औषधियां प्रति ३-४ घण्टे पर बार-बार देनां चाहिये। अवशोषणके बाद सल्फनिलमाइड सल्फोनमाइड वर्ग की अन्य औषधियों की अपेक्षा शीघ्रतापूर्वक शरीर के सभी रसों में व्याप्त हो जाता है। सल्फापाईरिडिन का लगभग यही गुण होता है और यकृत् मे इसका विशेष सान्द्रण होता है। सल्फाथियाजोल में भी प्राय. सल्फनिलमाइड का ही गुण होताहै, किन्तु मस्तिष्क-सुषुम्ना-तरल (cerebro spinal fluid) में इसका संकेन्द्रण बिलकुल कम होता है।

अवशोषण के बाद एसिटिलेशन (acetylation) या एसीटिलीकरण क्रिया द्वारा एसिटेट (acetate) के साथ अनुबन्धन या संयुग्मन (Conjugation) होता है। संयुग्मित समास अन्नस्य होने के अतिरिक्त विषाक्त होता है, अतएव शीघ्रतापूर्वक यह शरीरसे उत्सर्जित हो जाता है। क्रिया कर लेने के बाद वृक्कों द्वारा इनका उत्सर्जन होता है। सल्फाथियाजोल अतिशीघ्र उत्सर्जित हो जाता है, जबकि सल्फाडाइजिन इसकी अपेक्षा धीरे-धीरे उत्सर्जित होता है।

कल्प या समास (preparations)--

(१) सल्फनिलमाइड या प्रोन्टोसिल एल्बम मात्रा— १-२ ग्राम प्रत्येक ३-४ घण्टों के बाद।

(२) सोल्यूसेप्टासिन।

(३) सल्फएसिटामाइड या एल्ब्यूसिड।

(४) सल्फापाइरिडिन— मात्रा ½-२ ग्राम।

(५) सल्फाथियाजोल— मात्रा १ ग्राम प्रत्येक ३-४ घण्टे के बाद

(६) सल्फाडाइजिन— मात्रा-प्रारम्भिक २ ग्राम और बाद में १ ग्राम प्रत्येक ३-४ घण्टे बाद।

(७) सल्फामेराजीन— प्रारम्भिक मात्रा— ३-४ ग्राम, बाद में १ ग्राम प्रत्येक आठ घण्टे बाद।

बैसिलेरी डिसेन्ट्री में व्यवहार होनेवाली औषधियां

(८) सल्फागुआनिडिन— मात्रा— २-४ ग्राम प्रत्येक ३-४ घण्टों में।

(९) सक्सिनिलसल्फथियाजोल— मात्रा ३-६ ग्राम।

(१०) थैलिल सल्फथियाजोल— मात्रा— ३-६ ग्राम।

चिकित्सात्मक प्रयोग तथा औषध अवचारण—
(therapeutic indications and mode of administration)

कार्यक्षमता, सस्तापन, औषध अवचारण तथा सेवन की सरलता के कारण विविध अवस्थाओं में इनका व्यवहार होता है। निम्नलिखित बैक्टीरिया पर सल्फोनमाइड औषधियां कारगर होती हैं—

स्ट्रेप्टोकोक्कस, हिमोलिटिकस, न्यूमोकोकाई, गोनोकोकाई स्टेफाइलोकोकाई, मेनिङ्गोकोकाई, डिसेन्ट्री बेसिलाई, कोलाइफोर्म (बी. कोलाइ) और गैसगैंग्रिन के रोगाणु।

(१) स्ट्रेप्टोकोक्कस हिमोलिटिकस के संक्रमण में।

(२) श्वसनपथ के रोगों में जैसे लोबर या ब्रांकोन्यूमोनिया।

(३) मेनिन्जाइटिस और अन्य मेनिङ्गोकोकल संक्रमण में।

(४) प्रसवकालीन या प्रसवोत्तर रक्तावपाकता (puerperal septicaemia) (५ पार्श्विसर्प (erysipelas)।

(६) गोनोरिया (सुजाक) और अन्य गोनोकोकल संक्रमण में।

(७) बी कोलाई (B.coli), स्टेफ्लोकोकाई तथा अन्य रोगाणुओं द्वारा मूत्रपथ के संक्रमण होने पर (जैसे पाइलाइटिस या सिस्टाइटिस Pyelitis or Cystitis, वृक्कविद्रधि या मूत्रमार्ग प्रदाह होने पर)

(८) नेत्र के विविध रोगाणुसंक्रमणों में जैसे नवजात शिशु का अक्षिप्रदाह, नेत्र कलाप्रदाह, नेत्र वर्त्मप्रदाह आदि।

(९) बैसिलरी डिसेन्ट्री (Bacillary dysentry)

(१०) ब्यूबोनिक या ग्रन्थिक प्लेग (Bubonic plague)

(११) घाव, जले हुए स्थान या किसी शल्यक्रिया किये जानेवाले कोष्ठ के पूति संक्रमण (sepsis) से रक्षा के लिये भी सल्फोनामाइड्स का प्रयोग स्थानीय और सार्वदैहिक क्रिया के लिये किया जाता है।

सल्फोनामाइड वर्ग की औषधियों की प्रयोग-विधि—

(१) मुख या मौखिक मार्ग से।

(२) अधस्त्वगीय या पेश्यभ्यन्तरीय इन्जैक्शन द्वारा।

(३) सिराभ्यन्तर (intravenous) इन्जैक्शन द्वारा।

(४) पेरिटोनियम (peritoneum) या औदर्यगुहा में।

(५) द्रुप्सनविधि (dripmethod) द्वारा।

(६) इन्ट्राथिकल (intrathecal) या मस्तिष्क आवरणान्तरीय इन्जैक्शन द्वारा। (७) स्थानिक रूप में।

सल्फोनामाइड चिकित्सा के कुछ सम्भावित कुप्रभाव या भय—

ये रोगी के अतिद्रवता-या अति अपक्षरेदिता (hypersensitiveness) या औषधि की विषाक्तता द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये कुप्रभाव तन्त्रिका-संस्थान, त्वचा, रक्तोत्पादन, मूत्र और पाचन-संस्थाओं पर पड़ते हैं। नीलाङ्गता (cynosis), मेटहिमोग्लोबिनिमिया, सल्फ-हिमोग्लोबिनिमिया, उग्र यकृत क्षीणता तथा उग्र रक्तश्वेताणु न्यूनता आदि भयावह या सांघातिक अवस्थायें भी कभी-कभी उत्पन्न होसकती हैं

एन्टिबियोटिक्स, जीवाणुघ्न या जीवाणुद्वेषी औषधियां—

(antibiotics)

बैक्टेरिया, फफूंद या कवक (fungi) और एक्टिनोमाइसेटिस (actinomycetis) आदि से उत्पन्न ऐसे द्रव्य जो अन्य जीवाणुओं के सवर्धन या वृद्धि का निरोध करते हैं, वे सभी 'एन्टिबियोटिक्स' कहलाते हैं। यद्यपि आजतक अनेकानेक ऐसी औषधियों का आविष्कार हो चुका है, किन्तु अधिकतर विषाक्त या हानिकारक होने के कारण केवल कुछ ही एन्टिबियोटिक्स चिकित्साके लिये प्रयुक्त होते हैं। जैसे— पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, औरियोमाइसिन, टेरामाइसिन और क्लोरोमाइसेटिन। ये सब कवक और स्ट्रेप्टोमाइसेटिस से प्राप्त होते हैं। बैक्टेरियल स्रोत (उद्भव) के जो एन्टिबियोटिक्स प्रयुक्त होतेहैं, वैसिट्रेसिन और पॉलिमिक्सीन चिकित्साके लिये प्रयुक्त होनेवाले एन्टिबियोटिक्स मुख्यत २ श्रेणियोंमें विभाजित किये जातेहैं

(१) लोअर या साधारण एन्टिबियोटिक्स(lower antibiotics)

जैसे पेनिसिलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन। (२) व्यापक एन्टिबायोटिक्स, जैसे टेरामाइसिन, औरियोमाइसीन, क्लोरोमाइसेटिन आदि।

प्रथमश्रेणी के एन्टिबायोटिक्स प्रबल बैक्टेरोस्टैटिक या बैक्टेरिया स्थैर्यक (bacteriostatic) होने के अतिरिक्त कुछ हद तक बैक्टेरो-साइडल (bacterocidal) भी होते हैं। दूसरे वर्ग के एन्टिबायोटिक्स केवल बैक्टेरियास्थैर्यक ही होते हैं, बैक्टेरियानाशक नहीं। दोनों ही वर्गों के एन्टिबायोटिक्स बैक्टेरिया की विभाजनावस्था पर अधिकतम क्रियाशील होते हैं। संक्रामक रोगाणु की प्रकृति और व्यवहार को जानने वाले एन्टिबायोटिक को उसके प्रति कार्यक्षमता निश्चित करने के बाद ही उसे प्रयोग करना यद्यपि वांछित हो सकता है, किन्तु प्रत्येक रोगी या अवस्था में ऐसा करना सम्भव नहीं होता। इन एन्टिबायोटिक औषधियों का एक दुर्गुण यह है कि शीघ्र ही रोगाणु इनके प्रति दृढ़ या प्रतिरोधी (resistant) हो जाते हैं, जिससे उनकी कार्यक्षमता या क्रियाशीलता कम हो जाती है। दो उपर्युक्त औषधियों के संयुक्त प्रयोग द्वारा यह दुर्गुण अधिक समय तक रोका या विलम्बित किया जा सकता है।

पेनिसिलीन (Penicillin)

यह पेनिसिलिन नोटेटम (Penicillin notatum) नामक हरिया-सा मोल्ड (mould) के संवर्धन से प्राप्त होता है। परिशुद्धि के बाद इसका सोडियम, कैल्शियम, पोटैशियम और प्रोकेन के साथ लवण समास चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होता है। आक्सीकरक द्रव्यों (oxidising agents) और भारी-धातुओं (heavymetals) द्वारा यह अकर्मण्य या निष्क्रिय हो जाता है।

सल्फोनामाइड्स और स्ट्रेप्टोमाइसिन जैसे सहकर्मी द्रव्यों द्वारा इसकी सक्रियता में वृद्धि होती है। इसकी मात्रा अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयों में व्यक्त की जाती है। प्रत्येक इकाई या यूनिट में ०.०००६ मिलिग्राम शुद्ध पेनिसिलीन होता है। मात्रा रोगी की उमर और रोग की अवस्था के अनुसार निश्चित की जाती है।

शास्त्रीय कल्प (official preparations)

(१) क्रीम पेनिसिलिन या पेनिसिलिन क्रीम (cremor peni-

cillin) १००० इ्का ई० पेनिसिलिन प्रति ग्राम।

(२) क्रीमर पेनिसिलिन स्टेरिलिसेटस (Cremer Penicillin Sterilisatus) या जीवाणुरहित पेनिसिलिन।

(३) पेनिसिलीन इन्जेक्शन- २०००० इकाई प्रति सी.सी.।

(४) इन्जेक्शियो पेनिसिलिन ओलियोसा [injectio penicillin oleosa] बीबाक्स, एथिल ओलियेट या पी नट [Pea-nut] तेल में विलयित ३००००० इकाई प्रति सी. सी०

(५) अकुलेन्टम पेनिसिलीन [आंख का मलहम] १००० इकाई प्रतिग्राम।

(६) ट्रोकिसी पेनिसिलीनी [Trochischi Penicillini] या पेनिसिलीन लॉसेन्जेज। १००० इकाई प्रति लोजेन्जेज।

(७) अङ्गुएन्टम पेनिसिलीनी या पेनिसिलीनका मलहम, १००० इकाई प्रतिग्राम।

नन-ऑफिसियल कल्प [Non-official preparations]

[१] पेनिसिलीन टेब्लेट—१०,०००, २०,०००, ५०,००० और १ लाख इकाई प्रतिटेब्लेट मौखिक मार्ग से प्रयोग के लिये।

[२] पेनिसिलीन चिउइङ्गगम्— ५००० इकाई कैल्शियम पेनिसिलीन प्रति गम् (gum)

पेनिसिलीन द्वारा प्रभावित होने वाले बैक्टेरिया.—

स्टेफाइलोकोकस ऑरियस, स्ट्रेप्टोकोकस हिमोलिटिकस और विरिडेन्स, न्यूमोकोकस, गोनोकोकस, मेनिंगोकोकस, साइकोबैक्टेरिया कटारेलिस, बैसिलस एन्थ्रासिस. क्लोस्ट्रिडियम वर्ग, डिटैनस-बैसिलाई और स्पाइरोकीटस।

बैक्टेरिया जिन पर पेनिसिलिन का असर या प्रभाव नहीं होता:—

एन्टेरोकोकस, बैसिलस पायोसाइनस, प्रोटियस, फ्रिडलैन्डर्स, बी. कोलाई, बैसिलाई डिसेन्ट्री, कालेरा विब्रियो [हैजा के जीवाणु] पास्चुरिला, ब्रुसेला, यक्ष्मारोगाणु, वाइरस, हिमोफाइलस, इन्फ्लुएन्जा।

गुण तथा कार्य— यह पीताभ या श्वेत चूर्ण या स्फटिक होता है। खोलने के बाद यह साधारण ताप [६०° सेन्टिग्रेड] और वायुमण्डलमें नष्ट हो जाता है, इसलिये इसे प्रशीतक [रेफ्रिजरेटर] से ४° सेन्टिग्रेड ताप पर रखना चाहिये ' इस ताप पर यह ६-७ माह तक ठीक रहता है,

जबकि कमरे के साधारण ताप पर केवल १ घण्टे और ४५ डिग्री ताप पर २४ घण्टे । यह अम्ल, क्षार, भारी धातुओं, आक्सीकारकों और पेनिसिलिनेस [Penicillinase] जैसे विकार या एन्जाइम द्वारा नष्ट हो जाता है । यह पीव, रक्त या ऊतक-रस की विद्यमानता में भी कार्य करता है जो कि एक बहुत बड़ा गुण है, जो सल्फोनामाइड वर्ग की औषधियों में नहीं पाया जाता । यह अति सुरक्षित या निरापद औषध होती है ।

इसके प्रयोगका सबसे अधिक सुविधाजनक मार्ग पेशियों या मांस में इन्जेक्शन द्वारा या स्थानिक रूप से होता है । यह जल में सुविलेय होता है । इन्जेक्शन के बाद शीघ्र ही यह रक्त और शारीरिक रसों में फैल जाता है, किन्तु मस्तिष्क-सुषुम्ना द्रव, अश्रु और आन्त्यावरणिक रस में इसकी मात्रा अल्पतम होती है । शीघ्र उत्सर्जित हो जाने के कारण रुधिर में यथोचित सान्द्रण बनाए रखने के लिये प्रति ३-४ घण्टे बाद इन्जेक्शन लगाना पड़ता है ।

अल्पतीव्र (subacute) रोगों में प्रोकेन-पेनिसिलिन के प्रयोग द्वारा एक या दो इन्जेक्शन प्रतिदिन लगाने से भी काम चल जाता है रुधिर में इसका सान्द्रण लगभग ०.०२-०.२० इकाई प्रति सी. सी. होना चाहिये । अत्यधिक उग्र रोगों में और अधिक सान्द्रण आवश्यक होता है ।

चिकित्सात्मक प्रयोग—

क्रिस्टलाइन पेनिसिलीन— साधारणतः ५०,०००-१५०,००० इकाई प्रति ३-४ घण्टे पश्चात् इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग होता है । प्रोकेन पेनि० सिलिन (४ लाख) दिन में एक या दो बार इन्जेक्शन द्वारा दिया जाता है । पेनिसिलीन उन सभी रोगों में प्रयोग किया जा सकता है, जिसके रोगाणुओं पर इसका असर होता है । स्थानिक रूप में घाव पर पाउडर या साधारण विलयनके रूप में और अन्यत्र मलहम, क्रीम लाजेन्जेस, पौलक-बिन्दु या श्वसन-क्रिया द्वारा प्रयोग किया जाता है । निम्नलिखित रोगों में इसका प्रयोग होता है:—

स्थानिक रूप में— नेत्र के विविध रोग, त्वचा रोग, घाव, अस्थि-दाह, मुँह, कण्ठ और गले के रोगों में । स्थानिक इन्जेक्शन द्वारा

प्लूरिसी, एम्पाइमा, ब्राङ्कियेक्टेसिस, मेनिनजाइटिस और सपूय संधि प्रदाह आदि में।

सर्वाङ्गीय रूप में— १ उन रोगाणुओं के संक्रमण में जो इसके द्वारा प्रभावित होतेहों, जैसे स्ट्रेप्टो,स्टेफाइलो, गोनो, न्यूमोकोकाई आदि

२ रक्तविषाक्तता।

३. स्वल्पद्रुत बैक्टेरियल एन्डोकार्डाइटिस।

(subacute bacterial andocarditis)

४. डिफ्थेरिया (इस रोग में इसके साथ-साथ सिरम-चिकित्सा भी आवश्यक होती है)

५. गोनोरिया। ६. सिफलिस।

७. मूत्रपथीय रोगाणुसंक्रमण जैसे परिवृक्कीय विद्रधि।

(perimphric abscess)

८. गैस गैंग्रीन। ९. ऑस्टियोमाइलाइटिस या अस्थिप्रदाह।

—स्ट्रेप्टोमाइसिन और डाईहाइड्रोस्ट्रेप्टोमाइसिन—

(Streptomycin and dihydrostrptomycin)

स्ट्रेप्टोमाइसिन ग्रिसियस नामक जीवाणु या एक्टिनोमाइसेट द्वारा इसकी उत्पत्ति होती है। चिकित्सा के लिये शुद्ध स्ट्रेप्टोमाइसिन व्यवहार किये जाते हैं। साधारणतः ग्राम-पोजिटिव (Gram positive) जीवाणुओं के अतिरिक्त बहुत से ग्राम निगेटिव बैक्टेरिया जैसे यक्ष्मा रोगाणु, बी कोलाई, प्रवाहिका, प्लेग इन्फ्लुएन्ज़ाके रोगाणु पायोसाइनस और स्ट्रेप्टोकोकस फिकलिस की कुछ विशेष श्रेणी।

इसके दो मुख्य अवगुण हैं— (१) विषजनक या विकार कुप्रभाव दीर्घकालीन प्रयोग के बाद बधिरता उत्पन्न होने का भय रहता है।

(२) अकेले इसे ही बहुत समय तक प्रयोग करने पर रोगाणुओं पर इसका असर कम हो जाता है, क्योंकि वे दृढ़ (resistant) हो जाते हैं। इसको रोकने का उपाय यह है कि किसी अन्य सहधर्मी औषध (जैसे पी ए.एस., पेनिसिलिन, निकोटिनिक एसिड हाइड्राजाइड) के साथ-साथ इसका व्यवहार किया जाय।

औषध प्रयोग के मार्ग— (१.) मौखिक [oral] (२) इन्जेक्शन [क] स्थानिक [local] [ख] पेश्यभ्यन्तरीय [intramuscular]

(३) कटिवेध [lumber puncture] (४) स्थानिक)

अवशोषण और उत्सर्जन— आन्त्र आमाशय पथ से इसका अवशोषण बहुत कम होता है, इसलिये स्थानीय-क्रिया के लिये इसका व्यवहार किया जा सकता है। इन्जैक्शन द्वारा दिये जाने पर शीघ्र ही अवशोषित होकर रक्त में १-२ घण्टे के भीतर ही अधिकतम मात्रा में सान्द्रता हो जाता है। प्रभावकारी होने के लिये कम से कम ४ माइक्रोग्राम प्रति सी. सी. आवश्यक होता है।

इसका उत्सर्जन मुख्यतः मूत्र द्वारा होता है।

मात्रा— शरीरभार, उमर और रोगी की अवस्था के अनुसार ही मात्रा निर्धारित होती है। साधारण वयस्क के लिये इन्जैक्शन द्वारा १/२ ग्राम दिन में दो बार या एक ग्राम प्रतिदिन, या प्रति दूसरे दिन या सप्ताह में दो बार और रोग तथा रोगी की अवस्थानुसार। सम्पूर्ण मात्रा या कोर्स ३०-६० या १२० ग्राम।

चिकित्सात्मक प्रयोग—

(१) इसका सर्वाधिक महत्व ट्यूबरकुलोसिस या यक्ष्मा-रोग की चिकित्सा के लिये है। इस रोग की चिकित्सा में साधारणतः इसे पी ए. एस. या निकोटिनिक एसिड हाइड्राजाइड के साथ इन्जैक्शन द्वारा दिया जाता है। इसके प्रयोग द्वारा लोहिक के ऐसे रोगीभी अब बचने लगेहैं, जिनका बचना पहले असम्भव था। ट्यूबरकुलर मेनिनजाइटिस फेफड़ोंकी रसस्रावक-अवस्था (Exudative stage) लेरिन्जाइटिस एन्टेराइटिस तथा रोगी को आपरेशन द्वारा चिकित्साके लायक बनाने के लिये यह अत्यधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी द्रव्य है। यक्ष्मा के अतिरिक्त (७) प्लेग (२) बी. कोलाई के संक्रमण (विशेषतः मूत्रपथका) में विशेष लाभदायी होता है। इन्फ्लुएन्जा बैसिलाई पर भी इसकी क्रिया होती है स्थानीय रूप में गवाहिका और आंतस्राव में औत्रिक-मार्ग से इसका व्यवहार होता है। बैक्टेरियल एन्डोकार्डाइटिस में पेनिसिलिन के साथ प्रयुक्त होने पर एक दूसरे का गुण बढ़ाकर और अधिक कार्यक्षम होता है।

विस्तृत क्रिया प्रसार क्षेत्रीय एन्टिबायोटिक्स—

(Broad spectrum antibiotics)

चिकित्सा के लिये व्यवहार होनेवाली सब औषधियां कोटियो-

माइसिन, टेरामाइसिन और क्लोरेम्फेनिकोल या क्लोरोमाइसेटिन हैं इन्हें ब्रौड-स्पेक्ट्रम एन्टिबियोटिक्स इसलिये कहते हैं कि इनका कार्यक्षेत्र विस्तृत होता है, ये विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं व रोगाणुओं पर कार्य कर सकते हैं। इन सभी की क्रियाओं में समानता होने के कारण इनका एक साथ वर्गीकरण किया जाता है। ये आन्त्र आमाशय पथ से अवशोषित होते हैं और संकेन्द्रित रूप में मूत्र में उत्सर्जित होते हैं। डिप्थेरिया, यक्ष्मा, एक्टिनोमाइकोसिस आदि पर इनकी क्रिया नहीं होती, अन्यथा पेनिसिलीन और स्ट्रेप्टोमाइसिन के सम्बन्ध में वर्णित प्रायः सभी रोगाणुओं पर इनका असर होता है, यानी ये कारगर होती हैं।

इनके कुप्रभाव दो तरह के होते हैं:—(१) स्वयं औषधि के ही विषाक्त प्रभाव (२) रोगाणुओं के साथ-साथ शरीर के लिये उपयोगी जीवाणुओं के विनाश या प्रतिबन्धन द्वारा।

औरियोमाइसिन (Aureomycin).

यह एक पीला स्फटिक चूर्ण होता है, जो स्ट्रेप्टोमाइसिस औरियोफेसिएन्स (streptomyces aureofaciens) नामक कवक (fungus) से प्राप्त होता है।

कल्प, मात्रा, औषध अवचारण तथा चिकित्सात्मक प्रयोग:—

यह २५० मिलिग्राम की मात्रा में बन्द कैप्स्युल्स में अरक्षित बिकता है। साधारण वयस्क के लिये २५ मिलिग्राम प्रति किलोग्राम शरीरभार के अनुपात में या ४ कैप्स्युल्स (१०० एम. जी) प्रति ६ घण्टे के बाद प्रयुक्त होता है। रुग्णावस्था में सुधार होने के ३-४ दिन बाद तक न्यूनाधिक मात्रा में इसका प्रयोग जारी रखना चाहिये। नेत्रीय रोगों की चिकित्सा के लिये मलहम या विलेप के रूप में प्रयुक्त होता है। इसके दीर्घकालीन व्यवहार द्वारा कुछ आन्त्र आमाशय पथ के विकार उत्पन्न हो जाते हैं; जिनका निराकरण विटामिन 'बी' काम्प्लेक्स के सेवन द्वारा हो सकता है। अन्य एन्टिबियोटिक्स की अपेक्षा एक विशेष गुण इसमें यह होता है कि एमेबियेसिस में भी यह कारगर होता है। बैक्टेरियल न्यूमोनिया और स्ट्रेप्टोकोकल ब्रूसेलोसिस, टाइफस और सिफिलिस आदि में यह विशेष उपयोगी होता है।

निम्नलिखित रोगों में भी इसका व्यवहार होता है:—

टॉन्सिलाइटिस, एन्डोकार्डाइटिस, मेनिनजाइटिस, ब्रोंकिएक्टेसिस, एरिसिपेलास, सेल्युलाइटिस, विभिन्न प्रकार के टाइफस रोग, मूत्रपथके भिन्न-भिन्न रोग, चर्मरोग, हर्पिज (Herpes) प्रभृति रोग आदि ।

— टेरामाइसिन (Teramycin)—

यह स्ट्रेप्टोमाइसिस राइमोसस, (Streptomyces rimosus) नामक कवक से प्राप्त होता है । इसके गुण, कार्य तथा चिकित्सात्मक प्रयोग ऑरियोमाइसिन जैसे ही होते हैं । अत्यधिक आवश्यकता होने पर टेरामाइसिन या ऑरियोमाइसिन सिरान्तर्गत मार्ग से दिये जाते हैं

—क्लोरम्फेनिकॉल (Chloramphenicol)

यह स्ट्रेप्टोमाइसिस वेनेजुएला (Streptomyces venezula) नामक कवकसे प्राप्त होता है । इसका कृत्रिम संश्लेषण भी होता है । यह श्वेत स्फटिक द्रव्य होता है, जो २५० मिलिग्राम की मात्रा में कैप्सूलस में भरा हुआ मिलता है । शिशुओं के लिये शर्बत के रूप में क्लोरो-माइसेटिन पामिटेट उपलब्ध होता है । आन्त्र-आमाशय पथ से सरलतापूर्वक इसका अवशोषण होता है और खाने के दो घण्टे के अन्दर रुधिर में अधिकतम सान्द्रण हो जाता है और छह घण्टे के अन्दर ही यह पूर्ण रूपसे उत्सर्जित भी होजाता है । यह पित्त, मस्तिष्क सुषुम्ना तरल, शरीरसी और अपरा में भी प्रवेश कर जाता है, जो इसका विशेष गुण है । अन्य एन्टिबायोटिकों की अपेक्षा इसका एक और विशिष्ट गुण टायफायड और पाराटायफायड ज्वर में अत्यधिक प्रभावकारी होता है । इन रोगों में प्रायः अनुपम औषध के रूप में यह कार्य करता है । साधारण वयस्क के लिये दैनिक मात्रा ५० मिलिग्राम प्रतिकिलोग्राम शरीरभार के अनुपात में होती है, जो अनेक छोटी मात्राओं में बांट कर दी जाती है । ज्वर मुक्ति के बाद ४-७ रोज तक औषध कम मात्रा में देते रहना चाहिये, जिससे रोग का पुनराक्रमण नहीं हो ।

विपरीत प्रभाव— प्राकृतिक रूप से आंतों में "बी" वर्ग के विटामिन का संश्लेषण करनेवाले जीवाणुओं का यह अवरोधक होता है, इसलिये चिकित्सा के समय विटामिन 'बी' भी देना चाहिये अन्य

(शेष अगले पृष्ठ पर देखिये)

दसवाँ अध्याय

— विटामिन्स —

(Vitamins)

सन्तुलित आहार (balanced diet) उसे कहते हैं, जिसमें शरीर के लिये सभी आवश्यक घटक, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा या चर्बी, विटामिन्स, लवण (विशेषत: कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा और आयडिन) और जल यथेष्ट या यथोचित मात्रा में विद्यमान रहते हैं। इसे मिश्रित आहार भी कहते हैं। ऐसे आहार से प्रतिदिन प्रायः एक समान ही कैलोरियां (colories) या ऊर्जा प्राप्त होनी चाहिये और यह आहार सुपाच्य, अवशोषण और आत्मीकरण (assimilable) योग्य होना चाहिए। स्वास्थ्य, यथोचित शरीर वृद्धि और स्वाभाविक विकास के लिये ऐसे आहार की आवश्यकता होती है, विशेष करके वर्धमान अवस्था में।

विटामिन्स (Vitamins)— वे आवश्यक घटक हैं, आहार में जिनकी विद्यमानता स्वास्थ्य और आरोग्य के अनुपालन के लिये अत्यावश्यक होती है। इन्हें पहले उपाप्तकारक या अतिरिक्त आहार-घटक (accesory food factor) भी कहा जाता था। इनकी न्यूनता या अनुपस्थिति से अनेक प्रकार के न्यूनताजन्य रोग उत्पन्न होते हैं, जिनका निराकरण उनकी आपूर्ति या सम्भरण द्वारा किया जा सकता है। अधिकांश विटामिनों का पृथक्करण, रासायनिक रूप-

---

एण्टिबियोटिक्स औषधियों के साथ यह दिया जा सकता है।

टायफ्वाइड और पाराटायफ्वायड ज्वर के अतिरिक्त आन्त्र-आमाशय प्रदाह, प्रवाहिका, डिफ्टीरियारोग, माइनरी एन्टिरिकस या बैक्टेरियल न्यूमोनियां, कालीखांसी, मूत्रपथ के विविधरोग, आंखों का रोग, हर्पिज जोस्टर (Herpes zester), अल्सरेटिव कोलाइटिस, गलशोथ (Mumps) और पुनरावर्तक ज्वर में इसका सफल प्रयोग होता है।

षण और संश्लेषण हो चुका है और ये शुद्ध रूप में उपलब्ध हैं। स्वास्थ्य अनुपालन के लिये केवल सूक्ष्म मात्रामें ही इनकी आवश्यकता होती है। वानस्पतिक जगत् और हरे शाक-सब्जिओं में प्रचुर मात्रा में विटामिन मिलते हैं व मनुष्य तथा अन्य जीवधारी इन्हें इसीसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे प्राप्त करते हैं। विटामिन अपने विलेयगुणके अनुसार (१) जलविलेय (water soluble) और (२) वसाविलेय (fat soluble) इन दो मुख्य वर्गों में विभाजित किये जाते हैं।

जलविलेय विटामिन्स—

(१) विटामिन 'बी' समूह (B.complex)

विटामिन बी- १, एन्यूरिन या थियामिन।
वि. बी- २, रिबोफ्लेविन या लैक्टोफ्लेविन।
वि. बी- ३, नियासिन।
वि. बी- ४, वि. बी- ५,
वि. बी- ६, पाइरिडोक्सीन या विटामिन 'एच'
फोलिक एसिड फोलिनिक एसिड।
विटामिन बी- १२ इनोसिटोल, कोलिन आदि।

जल विलेय विटामिन्स—

(२) विटामिन 'सी' या एस्कॉर्बिक एसिड।

(३) विटामिन 'पी'।

वसाविलेय विटामिन्स

(fat soluble vitamins)

(१) विटामिन 'ए'—

विटामिन 'ए' -१ विटामिन 'ए' -२

(२) विटामिन 'डी'—

विटामिन 'डी' -१ विटामिन 'डी' -२

विटामिन 'डी' -३ विटामिन 'डी' -४

(३) विटामिन 'ई'—

(४) विटामिन 'के'—

(५) विटामिन 'एफ'—

अब हम विभिन्न विटामिनों के अनुपात, प्राप्ति या उपलब्धि, दैनिक

आवश्यकता, न्यूनताजन्य लक्षण और इनका निवारण आदि विषयों पर विचार करेंगे।

जलविलेय विटामिन्स (विटामिन 'बी' वर्ग)—

(water soluble vitamins)

आरम्भ में जैसे-जैसे इस वर्ग के विटामिन ज्ञात होते गये उनका नामकरण बी-१, बी-२ आदि होता गया, किन्तु वैज्ञानिक रीति के अनुसार आजकल इनके रासायनिक नाम अधिक प्रचलित हैं।

विटामिन बी-१, एन्यूरिन या थियामिन—

(vitamin B1. aneurin or thiamin)

मनुष्यों के लिये इस विटामिन की दैनिक आवश्यकता साधारण वयस्कों के लिये १.५, २.५ मिलिग्राम प्रतिदिन।

उद्भव (source) और उपलब्धि— चावल के कण, खमीर (yeast) जौ और जई, गेहूं, चोकरयुक्त आहार, मकई, बाजरा, मटर, सेम, फल और मेवा, दूध आदि बृहदन्त्रों (बड़ी आंतों) में जैवाणविक संश्लेषण भी होता है। अंकुरित अनाजों में इसकी मात्रा सविशेष होती है। इस विटामिन का संश्लेषण भी हो चुका है।

प्राकृतिक कार्य और गुण— यह कार्बोहाइड्रेट के आक्सीकरण से सम्बन्धित होता है। इसकी उपस्थिति में कार्बोहाइड्रेट वर्ग के आहारों का पूर्ण पचन होता है।

न्यूनताजन्य लक्षण— अधिकतर इसकी न्यूनता आंशिक होती है, यद्यपि कभी-कभी पूर्ण न्यूनता भी पायी जा सकती है। गम्भीर न्यूनता से 'बेरी-बेरी' (Beri-beri) नामक रोग एवं परिसरीय तन्त्रिका-शोथ (peripheral neuritis) और रक्तवाहिनी संस्थान और हृदय के विकार उत्पन्न होते हैं। थोड़ी न्यूनता द्वारा अरुचि, क्षुधानाश, अवसाद, पेट में गैस या वायु का जमा होना, सिरदर्द, कामकाज में अनिच्छा, स्मरणशक्ति की कमी, शारीरिक और मानसिक दुर्बलता, हृदय की धड़कन, दाहानुभूति, तन्द्रा, ग्लानि, सुन्नी, मन्दर्दृष्टि, नेत्रकम्प आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था का ठीक-ठीक निदान या उचित चिकित्सा नहीं होने पर आगे चलकर शोथ, शरीर में जल-संचय की प्रवृत्ति (विशेष करके घुटनों के पास), पिंडली पेशियों की

स्पर्शकातरता, हृदय की वृद्धि और त्वचा का अतिसंवेदनशीलता (hy-perausthesia) आदि लक्षण प्रकट होते हैं। चरम न्यूनावस्था में हस्त-पाद या मणिपात (foot drop and wrist drop) या पक्षाघात (paralysis) भी हो सकता है। ठीकसमय पर निदान होजाने पर १०० मिलिग्राम या अधिक विटामिन बी-१ का इन्जैक्शन लगाने से और समुचित चिकित्सा करने से रोगी शीघ्र ही ठीक हो जाता है। आरोग्य लाभ करनेके बाद उसे अपने आहारके विषय में हमेशा सतर्क रहना चाहिए कि यथोचित मात्रा में यह विटामिन उसे प्राप्त होता रहे

आजकल वैज्ञानिकों तथा विद्वानोंका मत है कि विटामिन 'बी-वर्ग' के किसी विशेष घटक की कमी होने पर अन्य घटकों की कमी की भी सम्भावना रहती है, अतएव सम्पूर्ण 'बी-वर्ग' का व्यवहार अधिक श्रेयस्कर होता है।

शास्त्रीय और व्यापारिक कल्प—

(१) इन्जैक्शन एन्यूरिन हाइड्रोक्लोराइड। मात्रा- २०-५० मिलि०

(२) टेब्लेट एन्यूरिन हाइड्रोक्लोराइड— ३ मिलीग्रामकी टिकिया

व्यापारिक योग— बिनबी, बेरिन, विटैवशन, प्लेनाविट-१ आदि।

— विटामिन बी-२ या रिबोफ्लेविन —

(vitamin B-2 or Riboflavin)

यह एक तापस्थायी वृद्धिकारक तत्त्व है, जिसे अमेरिका में विटामिन बी-जी (vitamin B g) कहते हैं। विटामिन बी-१ की तरह इसकी प्राकृतिक क्रिया विकार रूप में होती है, और ऊतक श्वसन क्रिया (tissue respiration) से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यह कार्बोहाइड्रेट चयापचय में भाग लेता है।

प्राकृतिक आश्रय और उपलब्धि— वानस्पतिक जगतमें यह विटामिन अधिक प्रचुरमात्रा में पाया जाता है। खमीर या यीस्ट, नवाङ्कुरित अनाज, हरे साग-सब्जी, दूध, यकृत, गुर्दा, आदि इस विटामिन की प्राप्ति के लिये उत्तम साधन हैं, आंतों (पक्वाशय) में भी जीवाणुओं द्वारा इसका संश्लेषण होता है।

दैनिक आवश्यकता— वयस्कों के लिये १.५-२ मिलिग्राम प्रतिदिन

न्यूनताके लक्षण— जो लक्षण स्थानिक या सार्वदैहिक और

मौखिक या नेत्रीय (oral or occular) हो सकते हैं। इसकी न्यूनता से ओठ, मुंह और जीभ में जलन तथा पीड़ा होती है, जिससे भोजन करने में तकलीफ होती है। ओठ तथा मुख-कोण (ऊपर और नीचे के होठों का मिलन या सन्धि स्थल) पर की श्लैष्मिक कला विदारित (फट जाती) हो जाती है और बाद में रूक्ष जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप ओठों का रङ्ग गहरा लाल हो जाता है। जीभ की पिटिकायें सूजी हुई, चिपिट और छत्राकार दिखाई देती हैं। नेत्रीय लक्षणों में प्रकाश-असहिष्णुता (photophobia), आंखों में ग्लानि या खुजलाहट तथा जल निकलना, आंखों की थकावट, मन्ददृष्टि और पलकों का आक्षेप आदि लक्षण प्रकट होते हैं। कॉर्निया (cornea स्वच्छ कनीनिका) के चारों ओर नई रक्तवाहिनियां बन जाती हैं। (वाहिन्युत्कर्ष) जिसे सीमान्त वाहिन्योत्कर्ष (marginal vascula-risation) कहते हैं। कार्निया का सांयोगिक द्रव्य भी सूज जाता है। इसी न्यूनता के कारण नाक और ओठों के निकट चर्मप्रदाह उत्पन्न हो जाता है। गर्भावस्था में इसकी न्यूनताके कारण वमनेच्छा (nausea) अकालजनन (premature delivery) आदि उपद्रव भी उत्पन्न हो सकते हैं। इस न्यूनावस्था या हीनावस्था का निदान और समुचित चिकित्सा होने पर रोगी शीघ्र ही रोगमुक्त हो जाता है। ५-२० मिलिग्राम प्रतिदिन मौखिक मार्ग या इञ्जेक्शन द्वारा इस काम के लिये पर्याप्त होता है।

विटामिन 'बी-६', पायरिडॉक्सिन या एडर्मिन —
(vitamin B-6 or pyridoxin)

यह वर्णहीन स्फटिक जल और आल्कोहल में विलेय होता है।

प्राकृतिक आश्रय तथा उपलब्धि— यह खमीर या यीस्ट, सोयाबीन, दूध, यकृत, साग सब्जी, अंकुरित अनाज और चावल के कण या छिलकल (rice polishings तन्दुल प्रमार्जन) आदि में सविशेष पाया जाता है।

प्राकृतिक कार्य— शरीर में प्रोटीन चयापचय (metabolism) में यह आवश्यक भाग लेता है।

न्यूनताजन्य लक्षण— चूहा सुअर, मुर्गी के बच्चे, कुत्तों और

अन्य परीक्षापात्र जानवरों में इसकी कमी से त्वचा की रूक्षता, शरीर-भार में कमी, जलशोथ और शारीरिक वृद्धि का अवरोध हो जाता है। अनेक प्रकार के तन्त्रिका-पेशीय व्यतिकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। मनुष्यों में दैनिक आवश्यकता आंतोंमें जैवाणुविक संश्लेषण द्वारा पूरी हो जाती है।

चिकित्सात्मक प्रयोग— मनुष्यों में बहुत से रोगों की चिकित्सामें इसका व्यवहार होता है। गर्भकालीन अतिवान्ति (hyperemesis-gravidarum) कम्पवात (chorea), कूटवृद्धिज पेशी परसपुष्टि (pseudo hypertrophic muscular dystrophy) पेलाग्रा, बेरीबेरी, सल्फोनामाइड्स तथा अन्य औषधियों के कुप्रभावों द्वारा उत्पन्न रक्त के विविध विकारों आदि की चिकित्सा के लिये इसका प्रयोग होता है। मात्रा— २०-२०० मिलिग्राम प्रतिदिन।

निकोटिनिक एसिड (Nicotinic acid)

इसे पेलाग्रा प्रतिबन्धक या प्रतिरोधक विटामिन भी कहा जाता है। विटामिन 'बी-वर्ग' के अन्य घटकों के साथ यह यकृत, दूध, किण्व, गुर्दा, चोकर और सम्पूर्ण अनाजों (whole cerels) में पाया जाता है। शरीर में भी जीवाणुओं द्वारा इसका संश्लेषण होता है। इसका कृत्रिम रासायनिक संश्लेषण भी हो चुका है।

दैनिक आवश्यकता—

न्यूनतम मात्रा— ८-२० मिलिग्राम प्रतिदिन।

अनुकूलतम मात्रा— १५-४० मिलिग्राम प्रतिदिन।

प्राकृतिक कार्य तथा गुण— शारीरिक कोषों के चयापचय में "हाइड्रोजन वाहक (Hydrogen carrier) के रूपमें यह आवश्यक भाग लेता है। कार्बोहाइड्रेट चयापचय में भी यह भाग लेता है। रक्तवाहिनियों का यह प्रसारण (dilatation) करता है।

न्यूनताजन्य लक्षण— इसकी अत्यधिक न्यूनता द्वारा पेलाग्रा (Pellagra) नामक रोग उत्पन्न होता है। इस रोग के तीन प्रधान लक्षण अतिसार, चर्मदाह और मनोलय (Diarrhoea, Dermatitis, Dementia) हैं। आन्त्र-आमाशय-पथ के लक्षण जैसे मुंह और जीभ की सूजन, अग्निमांद्य, शरीरभार में कमी, श्रमक्लान्ति, कब्ज

या अतिसार आदि विकार उत्पन्न होते हैं। इसके बाद त्वचा और तन्त्रिका-संस्थान सम्बन्धी लक्षण प्रकट होते हैं। त्वचा सूख कर मोटी और खुरदरी हो जाती है और खुजली तथा जलन पैदा होती है। इसके बाद उस पर पपड़ी पड़ने लगती है, जो कुछ समय बाद छिल जाती है और अन्त में त्वक्-क्षय परिलक्षित होता है। यह विकार समान रूप से शरीर के दोनों ओर दिखाई देता है।

मनोविकार के प्रारम्भिक लक्षण तन्द्रा, अवसाद, शंका, विस्मरण, आन्तर्विकृतता, मानसिक उद्वेग आदि पाए जाते हैं। बाद में गम्भीर लक्षण जैसे चैतन्यमेघाच्छन्नता (clouding of consciousness) दन्तचक्राभ स्तम्भ (cog wheel rigidity) नेत्र चालिनी विकार (oculomotor disturbances) उन्माद, चित्तभ्रम और उद्वेगिक अवसाद (agitated depression) आदि भी उत्पन्न हो सकते हैं। इसके साथ-साथ विटामिन 'बी' वर्ग के अन्य तत्वों की कमी के कारण अन्यान्य लक्षण भी उत्पन्न हो सकते हैं जैसे परिसरीय तन्त्रिकाशोथ।

चिकित्सात्मक प्रयोग— इन सभी विकारों का निराकरण यथोचित मात्रा में निकोटिनिक एसिड और विटामिन 'बी-वर्ग' का औषधियाँ देकर किया जा सकता है। सामान्य अवस्था में १०० मिलिग्राम और गम्भीर अवस्थाओं में ५०० मिलिग्राम प्रतिदिन की मात्रा में इसकी आवश्यकता हो सकती है। इसके साथ साथ सम्पूर्ण विटामिन बी कम्प्लेक्स देना और लाभदायक होता है। पैलाग्रा के अतिरिक्त अन्य रोगों में इसका व्यवहार होता है, जैसे वाहिनीप्रसारक गुण के कारण सिरारोध (thrombosis) हृद्-शूल (anginapectoris) वाहिन्याक्षेप (Vasospasm) या रेनॉड्स रोग, शिरः कम्पन्नक, कर्णनाद (tinnitus) और सविरामी वाहिन्याक्षेप (intermittant claudication) विविध आन्त्र-आमाशय-पचन विकार और सल्फोनामाइड तथा एन्टिबायोटिक (जीवाणुद्वेषी = antibiotics) औषधियों के कुप्रभावों से रक्षा करने के लिये।

पैन्टोथिनिक एसिड (Pentothenic acid)

यह भी उन्हीं सब पदार्थों में मिलता है, जिनमें विटामिन 'बी-वर्ग' के अन्य घटक मिलते हैं। इसका कृत्रिम या रासायनिक संश्ले-

रूप भी होता है।

प्राकृतिक कार्य तथा गुण— यह सम्भवतः जैवकीय एसिटिलेशन क्रिया (biological acetylation) के सहविकार (coenzyme) के रूप में कार्य करता है।

न्यूनताजन्य लक्षण (deficiency symptoms)—

इसकी न्यूनता का प्रभाव विशेष रूप से केन्द्रीय तन्त्रिका-संस्थान, आमाशय आन्त्रपथ और श्वसनपथ (Central Nervous System, Gastro-intestinal and Respiratory systems) पर बहुत ज्यादा पड़ता है।

चिकित्सात्मक प्रयोग— हाथ पैर में जलन, कोई स्थानीय घाव, केश वर्णहीनता या पतन, आंतों का रुकना और अपरेशन के बाद पैरालिटिक आइलियस (paralytic ileus) नामक अवस्था उत्पन्न होने पर इसका प्रयोग होता है।

मात्रा— प्रायः २०-४० मिलिग्राम प्रतिदिन।

विटामिन 'बी १२' (Vitamin B 12)

(सायनोकोबालामिन = cyanocobalamine)

सबसे पहले यह पदार्थ यकृत् से प्राप्त किया गया। आजकल स्ट्रेप्टोमाइसिस ग्रीसियस और स्ट्रेप्टोमाइसिस ऑरियोफेसियन्स Streptomyces griseus and Streptomyces aureofaciens जिससे स्ट्रेप्टोमाइसिन और ऑरियोमाइसिन नामक प्रसिद्ध एन्टि-बायोटिक औषधियां बनती हैं, उसी से यह भी बनता है। प्राकृतिक रूप में यकृत् वृक्क, दूध, अंडा, पनीर, मांस आदि में यह मिलता है

संघटन, प्राकृतिक कार्य और गुण— जैसा कि नाम से विदित होता है, इसके अणु में कोबाल्ट का एक और फास्फोरस के तीन परमाणु साइनाइड ग्रुप के साथ संयोजित रहते हैं।

यह लोहिताणुओं के निर्माण के लिये आवश्यक होता है, और इसकी कमी से रक्ताल्पता (anaemia) उत्पन्न होती है। शरीर में यह उन जैवरासायनिक प्रक्रियाओं में आवश्यक भाग लेता है, जिनमें न्यूक्लिकएसिड (nucleic acid) बनता है। शरीरवृद्धि के लिये भी सम्भवतः यह आवश्यक होता है।

इस विटामिन की दैनिक आवश्यकता अभी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुई है, किन्तु यह २-१० मिलिग्राम प्रतिदिन के लगभग अनुमान किया जाता है।

चिकित्सकीय प्रयोग— विभिन्न बृहदाकार रक्ताणुओं (macrocytic anemias) की चिकित्सा में इसका व्यवहार होता है— जैसे ट्रापिकल मैक्रोसिटिक एनीमिया, आहारज बृहत्कणीय रक्ताल्पता सांघातिक (पर्निशस एनीमिया), सबएक्यूट संयोजित सौषुम्नापकर्ष (subacute combined degeneration of the cord) मात्रा:— २५-१०० मिलिग्राम इन्जैक्शन द्वारा।

फोलिक एसिड (Folic acid)

(Pteryol glutamic acid)

ताजे और हरे शाक-सब्जियां (पालक गोभी आदि) यिस्ट, यकृत, वृक्क, दूध और आन्तव तन्तुओं में यह अधिक मिलता है। इसका कृत्रिम संश्लेषण भी होता है। हम लोगों के आहार के प्रोटीन भाग के साथ यह संयुक्त होता है, जो शरीर में जाकर विलग हो जाता है। मनुष्यों में इस विटामिन की दैनिक आवश्यकता अभी तक निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुई है, किन्तु प्रायः ०.५-१ मिलिग्राम प्रतिदिन होने का अनुमान किया जाता है, जो एक साधारण सन्तुलित आहार से आसानी से प्राप्त हो जाता है।

प्राकृतिक कार्य और न्यूनताजन्य लक्षण—

इस विटामिन की कमी से शरीर के कोषों की विभाजन क्रिया में बाधा पहुंचती है। थाइमिन के संश्लेषण, टाइरोसिन चयापचय (tyrocin metabolism) और रक्तोत्पादन क्रिया में यह भाग लेता है इसकी कमी से सभी तरह के रक्तकोषों का विकास और परिपक्वता अवरुद्ध हो जाता है।

चिकित्सकीय प्रयोग— बृहत्कणीय रक्ताल्पता, (आहारज, गर्भकालीन, उष्णकटिबन्धीय); संग्रहणी और वसातिसार जन्य रक्ताल्पता और एडिसोनियन (Addisonian), रक्ताल्पता :-

बायोटिन (Biotin):— इसे विटामिन 'एच' (vitamin H) भी कहते हैं। यह भी 'बी वर्ग' के अन्य विटामिनों के साथ ही पाया

जाता है । मनुष्यों में इसकी दैनिक आवश्यकता अभी तक निश्चित नहीं हुई है, किन्तु लगभग १५० माइक्रोग्राम प्रतिदिन होने का अनुमान किया जाता है । यह विटामिन कोषोंकी वृद्धि और चयापचय में भाग लेता है । इसकी कमीद्वारा त्वचा और श्लैष्मिक कलाके विकार और रक्तोत्पादन व्यतिकार तथा मानसिक परिवर्तन पाये जाते हैं ।

चिकित्सकीय प्रयोग— उपरोक्त वर्णित चर्मशोथ, जिह्वाशोथ और रक्तोत्पादन व्यतिकार और शैशवकालीन चर्मरोगों की चिकित्साके लिये इसका प्रयोग होता है ।

पाराएमाइनो बेन्जोइक एसिड-

(Paraamine benzoic acid)

मनुष्यों के लिये इस विटामिन का कोई विशेष महत्व नहीं है ।

विटामिन 'सी' (Vitamin C)

पर्यायवाची नाम— एस्कोर्बिक एसिड, एन्टिस्कोर्ब्युटिक विटामिन, स्कर्वी प्रतिरोधकतत्व, भास्करकाम्ल, सिविटामिक एसिड ।

उपलब्धि— प्रकृति का यह एक जलविलेय विटामिन होता है, जो आंवला, नारङ्गी, सन्तरा, कागजीनीबू, अंगूर, हरामिर्चा, टोमैटो-अङ्कुरित अनाज, हरे सागसब्जी, आलू और पौधों के वर्धमान भागमें अधिक पाया जाता है । दूध में यह कम मात्रा में रहता है और अधिक समय तक उबालने पर यह भी नष्ट होजाता है । इस विटामिन के अत्यधिक सेवन द्वारा भी किसीप्रकार का नुकसान नहीं पहुंचता ।

मनुष्यों के लिये इस विटामिन की दैनिक आवश्यकता:—

साधारण वयस्कों के लिये ५०-१०० मिलिग्राम प्रतिदिन जो प्रायः दो नीबू या दो औंस नारङ्गी का रस या ४ केले या १-२ आंवलों से प्राप्त हो सकता है । गर्भावस्था में १५०-२००, दूध पिलानेवाली स्त्रियों के लिये १५० और उग्र संक्रामक रोगों में २००० मिलिग्राम प्रतिदिन आवश्यक होता है ।

प्राकृतिक कार्य तथा गुण— यह वायु के संपर्क और उबालने से नष्ट हो जाता है, किन्तु अम्लीय पदार्थों द्वारा यह परिरक्षित होता है । यह शारीरिक तन्तुओं में हाइड्रोजनवाहक के रूपमें आक्सीकरण क्रियासे सम्बन्धित रहता है । कोलाजेन (collagen) बैन्डिङ्गतत्व

(reticulum) दन्तिन (dentine) आदि द्रव्यों के निर्माण में भाग लेता है। हड्डियों और दांतों के स्वस्थ और प्राकृतिक विकास के लिये यह आवश्यक होता है।

खून जमने के लिये भी यह एक आवश्यक घटक है। रुधिर केशिकाओं (blood capillaries) को स्वस्थ बनाये रखने के लिये यह विटामिन आवश्यक होता है और इसी की कमी से स्कर्वी-रोग में रक्तस्राव होता है। लोहितागु गठन और परिपक्वन (formation and maturing of r. b. c के लिये भी यह आवश्यक तत्व है। आमाशय से लोह (iron) के अवशोषण और फोलिक एसिड की क्रिया के लिये भी यह आवश्यक होता है। विषाक्त औषधियों के प्रयोग द्वारा उत्पन्न कुप्रभावों से यह शरीर की रक्षा करता है। अन्तःस्त्रावी प्रणाली विहीन ग्रन्थियों (जैसे सुप्रारेनल, डिम्बग्रन्थियां, थाइराइड ग्रन्थि आदि) के प्राकृतिक कार्य से भी यह सम्बन्धित रहता है।

न्यूनताजन्य लक्षण— इस विटामिनकी कमी से स्कर्वी (scurvy) या 'प्रशीताद' नामक रोग उत्पन्न होता है, जो एक दीर्घकालीन रोग है, और जिसका विशिष्ट लक्षण अनेक स्थानोंमे रक्तस्राव होता है। इसका आरम्भ धीरे-धीरे होता है। शुरू में कमजोरी, आलस्य, थकान, चिड़चिड़ापन महसूस होता है। बाद में मसूढ़ों को सूजन और रक्तस्राव, पैरों और टांगों में व्यथा, त्वचा और अधःत्वचीय ऊतकोंमें रक्तस्राव और श्लैष्मिक कलाओं (mucus membrane) से रक्तस्राव होता है। रक्तोत्पादन क्रियामें बाधा पड़ने से रक्ताल्पता (anemia) उत्पन्न होती है। अस्थि-निर्माण (bone formation) भी स्वाभाविक रूप से नहीं हो पाता और किसी-किसी रोगी में अस्वाभाविक रूप हड्डियां टेढ़ी हो जाती हैं। पर्शुकाओं (पसलियों) और कार्टिलेज (cartilage) के सन्धिस्थल पर गोल-गोल मटर के दानों के समान उभार दिखाई देते हैं, जिन्हें बिड्स (beads) और इस स्थिति को पर्शु बीड पर्दमाला (beading of ribs) कहते हैं।

हृदवाहिनी संस्थान (cardiovascular system) पर भी इस कमी का प्रभाव पड़ता है, जिससे हृत्-स्पन्दन (palpitation) जैसे रोग उत्पन्न हो सकते हैं। रोगप्रतिबन्धक या प्रतिरक्षा शक्ति घट जाने से तरह-तरह की बीमारियां घर बनाती हैं। घावों के भरने

और टूटी हुई हड्डियों के जुड़ने में अत्यधिक विलम्ब होता है।

चिकित्सात्मक प्रयोग— (१) स्कर्वी रोग में विटामिन 'सी' का प्रभाव चमत्कारी होता है। थोड़ी सावधानी बरतने पर इस रोग से रक्षा हो सकती है। इस रोग से प्रतिरक्षा और चिकित्सा दोनों कार्यों के लिये विटामिन 'सी' का प्रयोग होता है। चिकित्सा के लिये अवस्था और आवश्यकतानुसार १०० ५०० मिलिग्राम प्रतिदिन औषधि-मार्ग या इन्जेक्शन द्वारा दिया जा सकता है।

(२) संक्रामक रोगोंकी चिकित्सा के लिये— जैसे न्यूमोनिया, डिफ्थेरिया आदि।

(३) आमवात या र्‍यूमेटिज्म (rheumatism) की चिकित्सा (आनुषंगिक) के लिये।

(४) मसूढ़ों, मुख और दांतों के रोगों के लिये।

(५) रक्ताल्पता और रुधिर के अन्य विकारों में।

(६) चर्म रोगों में।

(७) नेत्र और नेत्रपटल के रोगों में।

(८) प्रत्यूर्जिक या एलर्जिक (allergic) अवस्थाओं में।

(९) गर्भावस्था और स्तन्यकाल में (pregnancy and lactation)

(१०) अस्थिभङ्ग (fracture) और घावों के जल्दी भरनेके लिये

(११) विषाल औषधियों के कुप्रभावों से रक्षा के लिये।

मात्रा:— १००-५०० मिलिग्राम प्रतिदिन।

शास्त्रीय कल्प— (official preparations)

(१) टेबलेट एसिड एस्कोर्बिक (विटामिन 'सी' टेबलेट)

मात्रा— (१) रोगप्रतिबन्धक— २५-७५ मिलिग्राम

(२) चिकित्सात्मक— २००-५०० मिलिग्राम

विटामिन 'पी' (Vitamin P)

यह विटामिन रक्त-केशिका-प्राचीर की पारगम्यता (permeability of blood capillaries)से सम्बन्धित होता है और परमियेबिलिटी नामका पहला अक्षर 'P' होने के कारण इसका ऐसा नाम पड़ा। यह भी नीबू, सन्तरा, नारङ्गी, अंगूर आदि फलों में अधिकतर पाया जाता है

प्राकृतिक कार्य और न्यूनता जन्य लक्षण—

यह विटामिन रुधिर केशिकाओं की स्वस्थता और कार्यक्षमता से सम्बन्धित होता है। इसकी कमी से से प्रवेश्यता या पारगम्यता बढ़ जाती है और अवरोधक शक्ति कम हो जाती है। त्वचा में रक्तस्राव होने के कारण सूक्ष्म लांछन या धब्बे पड़ जाते हैं।

रूप और मात्रा— यह विटामिन परिंडिन नाम से प्राप्य है। प्रत्येक टिकिया ०.२५ ग्राम हेस्पेरिडिन (Hespiridin) के बराबर होती है। साधारण दैनिक मात्रा प्राय: १-४ टिकिया प्रतिदिन होती है।

वसाविलेय विटामिन्स

(fat soluble Vitamins)

विटामिन 'ए' (Vitamin A)

पर्यायवाची नाम— वृद्धिकारक विटामिन, रोगप्रतिबन्धक विटा०

प्राकृतिक आश्रय और उपलब्धि— यह एक वसाविलेय विटामिन होता है- जो कोड तथा हालिबट मछली के यकृत, तेल, दूध मक्खन, पनीर, मलाई, अंडा का पीला भाग, यकृत्, गुर्दा (वृक्क), गाजर में कैरोटिन के रूप में, पातगोभी, हरी साग,सब्जी, शलगम, मूली, शकरकन्द, पालक, टमाटर अंकुरित अनाजों में विशेष पाया जाता है।

दैनिक आवश्यकता—

साधारण वयस्कों के लिये— ५००० अन्तर्राष्ट्रीय इकाई प्रतिदिन।
शिशुओं के लिये— १५००-२००० ,, ,, ,,
वर्धमान बालकोंको- २०००-५००० ,, ,,
गर्भावस्था और दूधसवण काल में- ६०००-८००० ,, ,,

एक पाइन्ट दूध, एक औंस मक्खन और थोड़ीसी हरी सागसब्जी से प्राय: २००० अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयाँ प्राप्त हो जाती हैं।

प्राकृतिक कार्य और न्यूनताजन्य लक्षण—

इस विटामिन की कमी से शरीरवृद्धि मन्द हो जाती है। शरीर की सभी श्लैष्मिक कलाओं की अक्षुण्णता बनाए रखने के लिये यह विटामिन आवश्यक होता है। यह श्वसन, मूत्र और रुधिर वाहिनी संस्थान, पोषणसंस्थान आदि सभी संस्थानों की आच्छादीय-कलाओं

(epithelial lining) के लिये आवश्यक होता है। त्वचा और नेत्र के तन्तुओं पर भी इसका अधिक प्रभाव पड़ता है। इसकी कमीसे शरीर वृद्धि अवरुद्ध होजाती है और रोग प्रतिबन्धक या रोगनिरोधक क्षमता में कमी होने के कारण शुष्काक्षिपाक (xerophthalmia) कौर्निया-मृदुभवन (keratomalacia) निशान्धता (night-blindness) तथा आंखों के अनेक विकार, न्यूमोनिया, ब्राङ्काइटिस, सर्दी, खांसी, कान बहना, त्वचा की रूक्षता या खुरदुरापन और शल्कीय रूप, दांतों के विकार, अतिसार, आमातिसार आदि भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सात्मक प्रयोग— यह विटामिन निम्नलिखित रोगों की चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होता है।

(१) उपरोक्त सभी रोगों से रक्षा के लिये और गर्भावस्था तथा शिशुओं के लिये यह संरक्षी तत्व के रूप में व्यवहृत होता है।

(२) नेत्र-रोगोंके लिये— जैसे निशान्धता (nightblindness) शुष्काक्षिपाक, कौर्नियामृदुभवन, फिल्ली, नेत्रकला का जीर्णप्रदाह, प्रकाशासह्य (photophobia) और अश्रुस्राव में में कमी।

(३) विभिन्न चर्म रोगों में।

(४) अंत्रात्मक रोगों में।

(५) श्वास संस्थान के विभिन्न रोगों में।

(६) रोगनिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिये।

योग और मात्रा— हालिबट लिवर आयल में यह सर्वाधिक सान्द्रित रूप में मिलता है। आइकर विटामिन 'ए' [बी. पी.] के प्रत्येक ग्राम में ५०,००० यूनिट विटामिन 'ए' होता है।

मात्रा— [१] रोग प्रतिबन्धक मात्रा— ४०००-६००० अन्तर्राष्ट्रीय इकाई प्रतिदिन।

[२] साधारण रोगों की चिकित्सा के लिये— ५०,०००-१००००० अन्तर्राष्ट्रीय इकाई प्रतिदिन।

[३] अत्यधिक कमी होने पर— १००००००-३००००० अन्तर्राष्ट्रीय इकाई तक।

विटामिन 'डी' (Vitamin D)

यह भी एक वसा विलेय विटामिन है, जो दांतों और हड्डियों के

ल्यूपस वल्गेरिस [Lupus vulgaris], ग्लैण्डुलर ट्यूबरकुलोसिस [glandular tubercrulosis] तृणज्वर [Hayfever], शीत पित्त या पित्ती और सन्धिवात जैसे रोगोंमें भी इससे फायदा होताहै

सावधानी— इस विटामिन के अत्यधिक व्यवहारसे कुछ कुप्रभाव और हानि होतीहै, इसलिये इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक और चिकित्सक के आदेशानुसार ही करना चाहिये।

आफिशियल कल्प [official preparation]—

(१) लाइकर विटामिन 'डी' कन्सेन्ट्रेटस [liquor vitamin D concentratus] १००० इकाई विटामिन 'डी' प्रतिग्राम।

मात्रा— रोगनिरोधक— १०००–४००० इकाई।

रोगनिवारक या रोगहारी [curative] २०००–२०,००० इकाई।

(२) लाइकर विटामिन 'ए' एट् 'डी' कन्सेन्ट्रेटस [liquor vitamin A et D concentratus] प्रतिग्राम में विटामिन 'ए' ५०,००० और विटामिन 'डी' ५००० इकाई।

(३) लाइकर कैल्शिफेरोलिस (liquor calciferolis) १००० इकाई प्रति १५ मिनिम।

मात्रा— रोगप्रतिबन्धक— १०००–४००० इकाई।

रोगनिवारक— २०००–२०,००० इकाई।

विटामिन 'ई' (Vitamin E)

(प्रतिबन्ध्यत्व या गर्भ संस्थापक विटामिन antisterility vitamin)

यह वसा-विलेय विटामिन है, जो प्रजननशक्तिसे सम्बन्धित होताहै

प्राकृतिक उपलब्धि— यह विटामिन अंकुरित अनाजों विशेषकर गेहूं के अंकुर का तेल, बिनौले और ताड़ का तेल, लेट्यूस, शकुन, मक्खन, चोकरयुक्त आटा, दूध, अश्वगन्धा, शतावरी, बादाम आदि में विशेष रूप से पाया जाता है।

दैनिक आवश्यकता— यह निश्चित रूपसे अभी ज्ञात नहीं होसका है, किन्तु प्रायः २५ मिलिग्राम प्रतिदिन होने का अनुमान किया जाताहै

प्राकृतिक कार्य और न्यूनताजन्य लक्षण—

स्त्रियों और पुरुषों दोनों में सन्तानोत्पादक शक्ति बनाये रखने के लिये इस विटामिनकी आवश्यकता होती है और इसकी कमी होने पर

स्त्रियों में वन्ध्यत्व (sterility) और पुरुषों के शुक्राणुजनन को व्याघात पहुंचता है। एक तो गर्भ रहने ही नहीं पाता और रहने पर गिर जाता या गिर जाने का भय बना रहता है। भ्रूण निर्माण में भी व्याघात पहुंचता है।

प्रजनन शक्ति के अतिरिक्त मस्तिष्क-संस्थान (nervous system) और मांस पेशियों पर भी इसका असर पड़ता है। शायद यह पिट्यूटरी (pituitary) नामक अन्तःस्रावी ग्रन्थि से सम्बन्धित होता है।

चिकित्सात्मक प्रयोग—

(१) स्वभावज गर्भपात (habitual abortion)

(२) आशंकित गर्भपात (threatened abortion)

(३) वृद्धावस्थाकालीन मासिक रक्तस्राव बन्द होने के समय (रजोनिवृत्ति कालीन) उत्पन्न होने वाले लक्षणपुञ्जों (syndrome) की चिकित्सा के लिये।

(४) वृद्धावस्था में योनिकण्डुयन (खुजलाहट)

(५) पुरुषों में सन्तानोत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिये।

(६) तन्त्रिका-पेशी-संस्थान (neuromuscular system) के अनेक विकारों और कुछ हृद्-रोगों की चिकित्सा में।

(७) कुछ विशेष चर्म रोगों में।

शास्त्रीय-कल्प और मात्रा—

टोकोफेरोल एसिटेट [tocopherol acetate]

मात्रा— ३-१० मिलिग्राम प्रतिदिन।

यह 'एफाइनल' नामसे ३ मिलिग्राम की टिकिया के रूप में प्राप्य है। साधारणतः २००-६०० मिलिग्राम प्रतिदिन।

विविध गर्भपातों में— प्रारम्भिक मात्रा— ५०-१०० मिलिग्राम और इसके बाद अनुपालक मात्रा ३०-५० मिलिग्राम प्रतिदिन।

विटामिन 'के' (vitamin K)

(antihaemorrhagic vitamin = रक्तस्तम्भक विटामिन)

यह भी एक वसाविलेय विटामिन है, जो वानस्पतिक जगत् में अधिक पाया जाता है। इसके दो भेद हैं:—

(१) विटामिन 'के १' जो अल्फा-अल्फा [घास] पूस में मिलता है।

(२) विटामिन 'के-२' जो सड़ी हुई मछलियों में मिलता है। इस विटामिन का कृत्रिम संश्लेषण भी होता है।

प्राकृतिक उपलब्धि— हरी साग-सब्जी, अल्फा-अल्फा घास, गोभी, पालक, टमाटर, सोयाबीन, करमकल्ला, और हसादर आदि में यह विशेष परिमाण में पाया जाता है। आंतों में जीवाणुओं द्वारा भी इसका संश्लेषण होता है।

मनुष्यों के लिये इस विटामिन की दैनिक आवश्यक मात्रा अभी तक निश्चित नहीं हुई है।

प्राकृतिक कार्य और न्यूनताजन्य लक्षण— खून जमने के लिये प्रोथ्रोम्बिन नामक तत्व की आवश्यकता होती है (देखिये रक्तस्कन्दन या रक्तस्कन्दन-क्रिया) जिसकी उत्पत्ति यकृत में होती है। इसके निर्माण के लिये विटामिन 'के' की आवश्यकता होती है। इस विटा- की कमी से प्रोथ्रोम्बिन मात्रा कम हो जाती है, जिससे रक्तस्कन्दनकाल (clotting time) बढ़ जाता है, यानी किसी अंग के कटने पर अधिक समय तक खून बहता रहता है। विटामिन 'के' के अवशोषण के लिये पित्तलवणों की आवश्यकता होती है। किन्तु कृत्रिम रूप से संश्लिष्ट जल विलेय समासों के लिये पित्त-लवणों की उपस्थिति आवश्यक नहीं होती। जलाअवशोषण में कमी होने पर या किसी कारणवश पित्तलवणों की अनुपस्थिति द्वारा (जैसे अवरोधी कामला [obstructive jaundice] स्वभावतः इस विटामिन की कमी हो जाती है। किसी कारणवश वसा अवशोषण में विकार उत्पन्न होने से (जैसे पुराना अतिसार, स्प्रू (sprue) शिशु संग्रहणी, आमातिसार स्वयंभूत वसातिसार (idiopathic steatorrhoea आदि) या पित्त-लवणों की अनुपस्थिति (जैसे अवरोधीय कामला obstructive-jaundice)] से इस विटामिन और फलस्वरूप प्रोथ्रोम्बिन की मात्रा में कमी हो जाती है। विविध जीवाणुघ्न औषधियों द्वारा आन्त्रों में जैवाविषक संश्लेषण में विघ्न पड़ने के कारण इसकी कमी हो जाती है।

चिकित्सकीय प्रयोग— विविध रक्तस्रावी अवस्थाओं में रक्तस्कन्दन के लिये इसका व्यवहार होता है।

[२] नवजात शिशुओं के विविध रक्तस्रावी रोगों की चिकित्सा के लिये (जैसे शिशुओं का कामला icterus gravis neonatorum)

अथवा में या आयस्करीय अवस्थाओं में स्वतः रक्तस्राव होने पर या रक्तस्रावी प्रवृत्ति होने पर आपरेशन (operation) करने के पहिले और बाद में रक्तस्राव से रक्षा के लिये।

[३] **अवरोधीय कामला,** पित्तनलीय नाड़ीव्रण (obstructive jaundice and biliary fistula)

[४] विषाक्त औषधियों के व्यवहार द्वारा उत्पन्न प्रोथ्रोम्बिन-न्यूनता की चिकित्सा के लिये।

[५] रक्तकास (haemoptysis) होने पर या स्त्रियों के विविध अत्यधिक रक्तस्रावी रोगों में।

शास्त्रीय कल्प और मात्रा—

(१) इन्जैक्शन मेनफ्थोन [Injection menaphthoni] मात्रा— २-१० मिलिग्राम।

(२) टेबलेट एसिटोमेनोफ्थोन [tablet acetomenophthoni] मात्रा— २-१० मिलिग्राम।

साधारण अवस्थाओं या रोगों की चिकित्सा के लिये:—

(१) वयस्कों के लिये १०-४० मिलिग्राम प्रतिदिन।

(२) शिशुओं और बालकों के लिये ५-१० मिलिग्राम प्रतिदिन।